कविवर बनारसीदासविरचित

अर्ध कथानक

[लगभग तीन सौ वर्ष पहले लिखी गई
एक पद्यबद्ध आत्मकथा]

सम्पादक

नाथूराम प्रेमी

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

जो अपनी स्वर्गीया जननीके ही समान
निष्कपट और साधु-चरित था,

जिसने ज्ञानकी विविध शाखाओंका
विशाल अध्ययन और मनन किया था,

जो शीघ्र ही भारती माताके चरणोंमें
अनेक भेंटें चढ़ानेके मनसूबे बाँध रहा था,

परन्तु जिसे दैवने अकालमें ही उठा लिया,
अपने उसी एक मात्र पुत्र

स्व० हेमचन्द्रको

सूची

मुद्रण-कथा

सन् १९०५ में जब मैंने स्वर्गीय गुरुजी (पं० पन्नालालजी बाकलीवाल) की आज्ञा और अनुरोधसे बनारसीविलासका सम्पादन संशोधन किया और उसके प्रारंभमें कवि-वर बनारसीदासजीका विस्तृत परिचय लिखा, तब उसकी बड़ी प्रशंसा हुई और स्व० आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी जैसे विद्वानोंने उसकी लम्बी लम्बी समालोचनायें लिखीं। कविवरका उक्त परिचय एक तरहसे इस ' अर्ध कथानक ' का ही गद्यानुवाद था। उसे पढ़कर और उसके बीच बीचमें ' अर्ध कथानक ' के जो पद्य उद्धृत किये गये थे, उनपर मुग्ध होकर कई मित्रोंने अनुरोध किया कि यह मूल ग्रन्थ भी ज्योंका त्यों प्रकाशित हो जाना चाहिए, अनुवादकी अपेक्षा मूलका मूल्य बहुत अधिक है।

मुझे भी यह बात ठीक जँची और मैंने उसी समय इसके प्रकाशित करनेका निश्चय कर लिया; परन्तु वह निश्चय कार्यरूपमें अब ३८ वर्षके बाद परिणत हो रहा है और पाठक यह जानकर तो और भी आश्चर्य करेंगे कि इसकी प्रेस-कापी मैंने अपने सहयोगी देवरीनिवासी पं० शिवसहाय चतुर्वेदीजीसे सन् १९१२-१३ के लगभग तैयार करा ली थी, फिर भी यह ३० वर्ष तक प्रेसमें न जा सकी।

गत वर्ष अप्रैलमें इसी तरह बरसोंसे पड़े हुए ' जैन साहित्य और इतिहास ' के कामसे निबटा ही था और लगे हाथ इस पुस्तकसे भी निबट लेनेकी सोच ही रहा था कि अचानक ता० १९ मईको मुझपर ऐसा वज्रपात हुआ जिसकी कभी कल्पना भी न की थी। मेरे एक मात्र सुयोग्य और विद्वान् पुत्र हेमचन्द्रका चालीसगाँवमें देहान्त हो गया और उसके साथ ही मेरे सारे संकल्प और सारी आशायें धूलमें मिल गईं। इस पुस्तकके छपानेकी चर्चा करनेपर स्व० हेमचन्द्रने चालीसगाँवमें ही कहा था कि " दादा, यों तो तुम्हें कभी अवकाश मिलनेका नहीं, इसे प्रकाशित करनेका एक ही उपाय है और वह यह कि मूल पुस्तकको आँख बन्द करके प्रेसमें दे दिया जाए। ऐसा करनेसे यह कभी न कभी पूरी हो ही जाएगी। "

लगभग चार महीनेके बाद जब शोक और उद्वेग कुछ कम हुआ, तब अपने प्रिय पुत्रकी उक्त सूचनाके अनुसार पूर्वोक्त प्रेस-कापी प्रेसमें दे दी गई और उसके चार फार्म

२०-२५ दिनमें छप भी गये। उसके बाद शब्द-कोश, परिशिष्ट आदि तैयार किये जाने लगे और उनके भी दो फार्म फरवरीके प्रारंभ तक छप गये। परन्तु अचानक उसी समय मुझे लगभग चार महीनेके लिए बम्बई छोड़नी पड़ी और इतने समय-के लिए फिर यह काम रुका पड़ा रहा।

यद्यपि मानसिक उद्वेग, अनुत्साह और शरीरकी शिथिलताके कारण पुस्तकका सम्पादन जैसा मैं चाहता था वैसा न हो सका। परन्तु सन्तोष यही है कि पुस्तक किसी न किसी प्रकार पूरी हो गई और इतने लम्बेके समयके बाद भी मेरी एक इच्छा पूरी हो गई। त्रुटियोंके लिए विद्वान् पाठक मेरी वर्तमान अवस्थाका खयाल करके क्षमा कर ही देंगे।

पुस्तकके अन्तमें शब्दकोश, नामसूची आदिके जो १२ परिशिष्ट जोड़े गये हैं वे इस पुस्तकका ठीक ठीक मर्म समझनेके लिए आवश्यक हैं। इन परिशिष्टोंमें नं० ६-७-८ प्रायः वही हैं जो बनारसीविलासकी भूमिकामें दिये गये थे और जिन्हें जोधपुरके स्व० इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजीने मेरे अनुरोधसे लिख दिये थे।

अपने श्रद्धेय मित्र प्रो० हीरालालजी जैनका मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने ' अर्ध कथानककी भाषा ' पर विचार करके पुस्तककी उपयोगिताको बढ़ा दिया है।

तीन प्रतियोंके आधारसे इस पुस्तकका सम्पादन संशोधन किया गया है—

अ—भोलेश्वर (बम्बई) के पंचायती मन्दिरकी प्रति जो वि० सं० १८४९ की लिखी हुई है। यह प्रति अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा शुद्ध है और प्रेस-कापी इसीपरसे तैयार कराई गई थी।

ब—जैनमन्दिर धरमपुरा देहलीकी प्रति, जो आषाढ़ वदी ७ सं० १९०२ की लिखी हुई है।

स—बैदबाड़ा, देहलीके मन्दिरकी प्रति। इसमें प्रति लिखनेका समय नहीं दिया है और यह बहुत ही अशुद्ध है। इसमें सब मिलाकर ६६५ पद्य ही हैं, ३९२, ५५९-६६, ६२२, ६२३, ६६५ और ६७१ नम्बरके १३ पद्य नहीं हैं।

पिछलीं दोनों प्रतियाँ देहलीके लाला पन्नालालजी जैनकी कृपासे प्राप्त हुई थीं जिसके लिए मैं उनका अतिशय कृतज्ञ हूँ।

१५ जून, १९४३

नाथूराम प्रेमी

हिन्दीका प्रथम आत्म-चरित

सन् १६४१—

कोई तीन सौ वर्ष पहलेकी बात है। एक भावुक हिन्दी कविके मनमें नाना प्रकारके विचार उठ रहे थे। जीवनके अनेकों उतार चढ़ाव वे देख चुके थे। अनेकों संकटोंमेंसे वे गुज़र चुके थे, कई बार बाल बाल बचे थे, कभी चोरों डाकुओंके हाथ जान-माल खोनेकी आशङ्का थी तो कभी शूलीपर चढ़नेकी नौबत आनेवाली थी और कई बार भयंकर बीमारियोंसे मरणासन्न हो गये थे। गार्हस्थिक दुर्घटनाओंका शिकार उन्हें अनेकों बार होना पड़ा था, एकके बाद एक उनकी दो पत्नियोंकी मृत्यु हो चुकी थी और उनके नौ बच्चोंमेंसे एक भी जीवित नहीं रहा था ! अपने जीवनमें उन्होंने अनेकों रंग देखे थे—तरह तरहके खेल खेले थे—कभी वे आशिकीके रंगमें सराबोर रहे तो कभी धार्मिकताकी धुन उनपर सवार थी और एक बार तो आध्यात्मिक फिटके वशीभूत होकर वर्षोंके परिश्रमसे लिखा अपना नवरसका ग्रन्थ गोमती नदीके हवाले कर दिया था ! तत्कालीन साहित्यिक जगत्में उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिल चुकी थी और यदि किम्वदन्तियोंपर विश्वास किया जाय तो उन्हें महाकवि तुलसीदासके सत्सङ्गका सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ था बल्कि उनसे यह सर्टीफिकेट भी मिला था कि आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है। सुना है कि शाहजहाँ बादशाहके साथ शतरंज खेलनेका अवसर भी उन्हें प्रायः मिलता रहा था। सम्वत् १६९८ (सन् १६४१) में अपनी तृतीय पत्नीके साथ बैठे हुए और अपने चित्र-विचित्र जीवनपर दृष्टि डालते हुए यदि उन्हें किसी दिन आत्म-चरितका विचार सूझा हो तो उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं।

नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यों तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूँठसे होइ॥

अपने जीवनके पतझड़के दिनोंमें लिखी हुई इस छोटीसी पुस्तकसे यह

आशा उन्होंने स्वप्नमें भी न की होगी कि वह कई सौ वर्ष तक हिन्दी जगत्में उनके यशःशरीरको जीवित रखनेमें समर्थ होगी।

कविवर बनारसीदासके आत्म-चरित 'अर्ध कथानक'को आद्योपान्त पढ़नेके बाद हम इस परिणामपर पहुँचे हैं कि हिन्दी साहित्यके इतिहासमें इस ग्रन्थका एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ ही इसमें वह संजीवनी शक्ति विद्यमान् है जो इसे अभी कई सौ वर्ष और जीवित रखनेमें सर्वथा समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता, निरभिमानता और स्वाभाविकताका ऐसा ज़बरदस्त पुट इसमें विद्यमान है, भाषा इस पुस्तककी इतनी सरल है और साथ ही यह इतनी संक्षिप्त भी है, कि साहित्यकी चिरस्थायी सम्पत्तिमें इसकी गणना अवश्यमेव होगी। हिन्दीका तो यह सर्वप्रथम आत्मचरित है ही, पर अन्य भारतीय भाषाओंमें इस प्रकारकी और इतनी पुरानी पुस्तक मिलना आसान नहीं। और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह है कि कविवर बनारसीदासका दृष्टिकोण आधुनिक आत्म-चरित-लेखकोंके दृष्टिकोणसे बिल्कुल मिलता जुलता है। अपने चारित्रिक दोषोंपर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबीके साथ किया है मानों कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्तिसे कोई विश्लेषण कर रहा हो। आत्माकी ऐसी चीरफाड़ कोई अत्यन्त कुशल साहित्यिक सर्जन ही कर सकता था और यद्यपि कविवर बनारसीदासजी एक भावुक व्यक्ति थे—गोमतीमें अपने ग्रन्थको प्रवाहित कर देना और सम्राट् अकबरकी मृत्युका समाचार सुनकर मूर्च्छित हो जाना उनकी भावुकताके प्रमाण हैं—तथापि इस आत्म-चरितमें उन्होंने भावुकताको स्थान नहीं दिया। अपनी दो पत्नियों, दो लड़कियों और सात लड़कोंकी मृत्युका ज़िक्र करते हुए उन्होंने केवल यही कहा है:—

" तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथकी भाँति।
ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौं उपसांति॥ "

यह दोहा पढ़कर हमें प्रिन्स क्रोपाटकिनकी आदर्श लेखशैलीकी याद आगई। उनका आत्मचरित उन्नीसवीं शताब्दीका सर्वोत्तम आत्म-चरित माना जाता है। उसमें उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय अग्रजकी मृत्युका जिक्र केवल एक वाक्यमें किया था:—

" A dark cloud hung upon our cottage for many months. "

अर्थात् "कितने ही महीनोंतक हमारी कुटीपर दुःखकी घटा छाई रही।" यह बात ध्यान देने योग्य है कि ऐलेगज़ैण्डर क्रोपाटकिन ज्योतिर्विज्ञानके बड़े पण्डित थे, जारकी रूसी नौकरशाहीने निरपराध ही उन्हें साइबेरियाके लिए निर्वासित कर दिया था और वहाँसे लौटते समय उन्होंने आत्म-घात कर लिया था!

अपने चारित्रिक स्खलनोंका वर्णन उन्होंने इतनी स्पष्टतासे किया है कि उन्हें पढ़कर अराजकवादी महिला ऐमा गोल्डमैनके आत्म-चरितकी याद आ जाती है। अँग्रेजीके एक आधुनिक आत्मचरित*में उसकी लेखिका ऐथिल मैनिनने अपने पुरुष-सम्बधोंका वर्णन निःसंकोच भावसे किया है पर उसे इस बातका क्या पता कि तीन सौ वर्ष पहले एक हिन्दी कविने इस आदर्शको उपस्थित कर दिया था। उनके लिये यह बड़ा आसान काम था कि वे भी "मोसम कौन अधम खल कामी" कहकर अपने दोषोंको धार्मिकताके पर्देमें छिपा देते। उन दिनों आत्मचरितोंके लिखनेकी रिवाज़ भी नहीं थी—आजकल तो विलायतमें चोर डाकू और वेश्याएँ भी आत्मचरित लिख लिख कर प्रकाशित कर रही हैं—और तत्कालीन सामाजिक अवस्थाको देखते हुए कविवर बनारसीदासजीने सचमुच बड़े दुःसाहसका काम किया था। अपनी इश्कबाज़ी और तज्जन्य आतशक (सिफलिस) का ऐसा खुल्लमखुल्ला वर्णन करनेमें आधुनिक लेखक भी हिचकिचावेंगे। मानों तीन सौ वर्ष पहले बनारसीदासजीने तत्कालीन समाजको चुनौती देते हुए कहा था "जो कुछ मैं हूँ, आपके सामने मौजूद हूँ, न मुझे आपकी घृणाकी पर्वाह है और न आपकी श्रद्धाकी चिन्ता।" लोक-लज्जाकी भावनाको ठुकरानेका यह नैतिक बल सहस्रोंमें एकाध लेखकको ही प्राप्त हो सकता है।

कविवर बनारसीदासजी आत्मचरित लिखनेमें सफल हुए इसके कई कारण हैं, उनमें एक तो यह है कि उनके जीवनकी घटनाएँ इतनी वैचित्र्य-पूर्ण हैं कि उनका यथाविधि वर्णन ही उनकी मनोरंजकताकी गारंटी बन सकता है। और दूसरा कारण यह है कि कविवरमें हास्यरसकी प्रवृत्ति अच्छी मात्रामें पाई जाती थी। अपना मज़ाक उड़ानेका कोई मौका वे नहीं छोड़ना

---

* Confessions and impressions by Ethel Mannin.

चाहते। कई महीनों तक आप एक कचौड़ीवालेसे दुबक्ता कचौड़ियाँ खाते रहे थे। फिर एक दिन एकान्तमें आपने उससे कहा—

" तुम उधार कीनौ बहुत, आगे अब जिन देहु।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु॥ "

पर कचौड़ीवाला भला आदमी निकला और उसने उत्तर दिया—

" कहै कचौरीवाल नर, बीस रुपैया खाहु।
तुमसौं कोउ न कछु कहै, जहां भावै तहां जाहु॥ "

आप निश्चिन्त होकर छै सात महीने तक दोनों वक्त भरपेट कचौड़ियाँ खाते रहे और फिर जब पैसे पास हुए तो चौदह रुपये देकर हिसाब भी साफ कर दिया। चूँकि हम भी आगरे जिलेके ही रहनेवाले हैं, इसलिये हमें इस बात-पर गर्व होना स्वाभाविक है कि हमारे यहाँ ऐसे दूरदर्शी श्रद्धालु कचौड़ीवाले विद्यमान् थे जो साहित्यसेवियोंको छै सात महीने तक निर्भयतापूर्वक उधार दे सकते थे। कैसे परितापका विषय है कि कचौड़ीवालोंकी वह परम्परा अब विद्यमान् नहीं, नहीं तो आजकलके महँगीके दिनोंमें वह आगरेके साहित्यिकोंके लिये बड़ी लाभदायक सिद्ध होती।

कविवर बनारसीदासजी कई बार बेवकूफ बने थे और अपनी मूर्खताओंका उन्होंने बड़ा मनोहर वर्णन किया है। एक बार किसी धूर्त संन्यासीने आपको चकमा दिया कि अगर तुम अमुक मंत्रका जाप पूरे सालभर तक बिल्कुल गोपनीय ढङ्गसे पाखानेमें बैठकर करोगे तो वर्ष बीतने पर घरके दर्वाज़े पर एक अशर्फ़ी रोज़ मिला करगी। आपने इस कल्पद्रुम मंत्रका जाप उस दुर्गन्धित वायुमंडलमें विधिवत् किया पर स्वर्णमुद्रा तो क्या आपको कानी कौड़ी भी न मिली!

बनारसीदासजीका आत्मचरित पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि मानों हम कोई सिनेमा फिल्म देख रहे हैं। कहींपर आप चोरोंके ग्राममें लुटनेसे बचनेके लिये तिलक लगाकर ब्राह्मण बनकर चोरोंके चौधरीको आशीर्वाद दे रहे हैं तो कहीं आप अपने साथी संगियोंकी चौकड़ीमें नंगे नाच रहे हैं या जूत-पैजारका खेल खेल रहे हैं।—

" कुमती चारि मिले मन मेल। खेला पैजारहुका खेल॥
सिरकी पाग लैहिं सब छीन। एक एककौं मारहिं तीन॥ "

एक बार घोर वर्षाके समय इटावेके निकट आपको एक उद्दण्ड पुरुषकी खाटके नीचे टाट बिछाकर अपने दो साथियोंके साथ लेटना पड़ा था। उस गँवार धूर्तने इनसे कहा था कि मुझे तो खाटके बिना चैन नहीं पड़ सकती और तुम इस फटे हुए टाटको मेरी खाटके नीचे बिछाकर उसपर शयन करो।

'एवमस्तु' बानारसि कहै। जैसी जाहि परै सो सहै।
जैसा कातै तैसा बुनै। जैसा बोवै तैसा लुनै।
पुरुष खाटपर सोया भले। तीनौ जनैं खाटके तले।

एक बार आगरेको लौटते हुए कुर्रा नामक ग्राममें आप और आपके साथियोंपर झूठे सिक्के चलानेका भयंकर अपराध लगा दिया गया था और आपको तथा आपके अन्य अठारह साथी यात्रियोंको मृत्युदण्ड देनेके लिये शूली भी तय्यार कर ली गई थी! उस संकटका ब्यौरा भी रोंगटे खड़े करनेवाले किसी नाटक जैसा है। उस वर्णनमें भी आपने अपनी हास्य-प्रवृत्तिको नहीं छोड़ा।

सबसे बड़ी खूबी इस आत्म-चरितकी यह है कि वह तीनसौ वर्ष पहलेके साधारण भारतीय जीवनका दृश्य ज्योंका त्यों उपस्थित कर देता है। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे कुछ प्रतिभाशाली साहित्यिक इस दृष्टान्तका अनुकरण कर आत्मचरित लिख डालें। यह कार्य्य उनके लिये और भावी जनताके लिये भी बड़ा मनोरंजक होगा। बकौल 'नवीन' जी

"आत्मरूप दर्शनमें सुख है, मृदु आकर्षण-लीला है और विगत जीवन-संस्मृति भी स्वात्मप्रदर्शनशीला है; दर्पणमें निज विम्ब देखकर यदि हम सब खिंच जाते हैं, तो फिर संस्मृति तो स्वभावतः नर-हिय-हर्षणशीला है!" स्वर्गीय कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने चैतालिमें 'सामान्य लोक' शीर्षक एक कविता लिखी है जिसका सारांश यह है:—

"सन्ध्याके समय काँखमें लाठी दबाये और सिरपर बोझ लिये हुए कोई किसान नदीके किनारे-किनारे घरको लौट रहा हो। अनेक शताब्दियोंके बाद यदि किसी प्रकार मंत्र बलसे अतीतके मृत्यु-राज्यसे वापस बुलाकर इस किसानको मूर्तिमान दिखला दिया जाय, तो आश्चर्य-चकित होकर असीम जनता उसे चारों ओरसे घेर लेगी और उसकी प्रत्येक कहानीको उत्सुकता-पूर्वक सुनेगी। उसके सुख-दुःख, प्रेम-स्नेह, पास-पड़ौसी, घर-द्वार, गाय-बैल,

खेत-खलिहान इत्यादिकी बातें सुनते-सुनते जनता अघायेगी नहीं। आज जिसके जीवनकी कथा हमें तुच्छतम दीख पड़ती है वह शत शताब्दियोंके बाद कवित्वकी तरह सुनाई पड़ेगी।"

सन्ध्या बेला लाठि काँखे बोझा बहि शिरे।
नदीतीरे पल्लीवासी घरे जाय फिरे॥
शत शताब्दी परे यदि कोनो मते।
मन्त्र बले, अतीतेर मृत्युराज्य ह'ते॥
एई चाषी देखा देय ह'ये मूर्तिमान।
एई लाठि काँखे ल'ये विस्मित नयान॥
चारि दिके घिरि ता'रे असीम जनता।
काड़ाकाड़ि करि लवे ता'र प्रति कथा॥
ता'र सुख दुःख यत ता'र प्रेम स्नेह।
ता'र पाड़ा प्रतिवेशी, ता'र निज गेह॥
ता'र क्षेत ता'र गरु ता'र चाख वास।
शुने शुने किछु तेइ मिटिवे न आश॥
आजि जाँर जीवनेर कथा तुच्छतम।
से दिन शुनावे ताहा कवित्त्वेर सम!

मान लीजिये यदि आज हमारी मातृभाषाके बीस पच्चीस लेखक विस्तारपूर्वक अपने अनुभवोंको लिपिबद्ध कर दें तो सन् २२४३ ईस्वीमें वे उतने ही मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण बन जावेंगे जितने मनोरंजक कविवर बनारसीदासजीके अनुभव हमें आज प्रतीत हो रहे हैं। ग़दरको हुए अभी बहुत दिन नहीं नहीं हुए। अभी हमारे देशमें ऐसे व्यक्ति मौजूद हैं जिन्होंने सन् १८५७ का ग़दर देखा था। इस ग़दरका आँखों देखा विवरण एक महाराष्ट्रयात्री श्रीयुत विष्णु भटने किया था और सन् १९०७ में सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिन्तामण विनायक वैद्यने इसे लेखकके वंशजोंके यहाँ पड़ा हुआ पाया था। उन्होंने उसे प्रकाशित भी करा दिया। उसकी मूल प्रति पूनाके 'भारत इतिहास संशोधक मंडल' में सुरक्षित है। जब विष्णुभटको पूनामें यह ख़बर मिली कि श्रीमती बायजाबाई सिंधिया मथुरामें सर्वतोमुख यज्ञ करानेवाली हैं तो आपने मथुरा आनेका निश्चय किया। पिताजीसे आज्ञा

माँगी तो उन्होंने उत्तर दिया, “ उधर अपने लोग बहुत कम हैं, मार्ग कठिन है, लोग भाँग और गाँजा पीनेवाले हैं और मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं।”

स्त्रियोंके मायावी होनेकी बात पढ़कर हँसी आये विना नहीं रहती। दक्षिणवालोंके लिये मथुराकी स्त्रियाँ मायावी होती हैं और इधर उत्तरवालोंके लिये बंगालकी स्त्रियाँ जादूगरनी होती हैं, जो आदमीको बैल बना देती हैं और बंगालियोंके लिये कामरूप (आसाम) की स्त्रियाँ कपटी और भयंकर होती हैं। बंगालमें पूरे ग्यारह वर्ष रहनेके बाद भी हम बछियाके ताऊ नहीं बने, मनुष्य ही बने रहे, यही इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ये बातें कोरी गप हैं। हाँ तो विष्णुभटको मथुराकी मायावी स्त्रियोंसे सुरक्षित रखनेके लिये उनके चाचा भी साथ हो लिये थे और इन्हीं चाचा भतीजेका यात्रा-वृत्तान्त आज ८७ वर्ष बाद एक ऐतिहासिक ग्रन्थ बन गया है !

क्या ही अच्छा होता यदि हिन्दीके धुरंधर विद्वान् आगे आनेवाली सन्तानके लिये अपनी अनुभूतियोंको सुरक्षित रखते। कितने पाठकोंको यह मालूम है कि महामना मालवीयजीने आजसे ६०-६२ वर्ष पहले कालेज़के दिनोंमें एक प्रहसन लिखा था जिसमें झक्कड़सिंहके रूपमें अपना चित्रण किया था ! मालवीयजीकी कविता सुन लीजिये—

अपने सम्बंधमें

गरे जूहीके हैं गजरे पड़ा रङ्गीं डुपट्टा तन।
भला क्या पूछिए धोती तो ढाकेसे मँगाते हैं॥
कभी हम वारनिश पहनें, कभी पंजाबका जोड़ा।
हमेशा पास डण्डा है ये ‘ झक्कड़सिंह ’ गाते हैं॥

न ऊधोसे हमें लेना न माधोका हमें देना।
करैं पैदा जो खाते हैं व दुखियोंको खिलाते हैं॥
नहीं डिप्टी बना चाहें न चाहें हम तसिल्दारी।
पड़े अलमस्त रहते हैं युँही दिनको बिताते हैं॥
न देखें हम तरफ उनकी जो हमसे नेक मुँह फेरैं।
जो दिलसे हमसे मिलते हैं झुक उनको देख जाते हैं॥
नहीं रहती फ़िकर हमको कि लावें तेल औ लकड़ी।

मिले तो हलवे छन जावें नहीं झूरी उड़ाते हैं ॥
सुनो यारो जो सुख चाहो तो पचड़ेसे गृहस्थीके ।
छुटो फक्कड़पना ले लो यही हम तो सिखाते हैं ॥
हमें मत भूलना यारो बसे हम पास 'मनमोहन।'
हुई है देर, जाते हैं, तुम्हारा शुभ मनाते हैं ॥

यदि स्वर्गीय द्विवेदीजीने अपना जीवनचरित लिख दिया होता तो हमें दौलतपुरसे ३६ मील दूर रायबरेलीको आटा-दाल पीठपर लादे हुए पैदल जानेवाले उस तपस्वी बालकके और भी वृत्तान्त सुननेको मिलते, जो रोटी बनाना नहीं जानता था और जो इसलिये दालहीमें आटेकी टिकियाँ डाल कर और पकाकर खा लिया करता था।

संसार दुःखमय है और उसमें निरन्तर दुर्घटनाएँ घटा ही करती हैं। यदि कोई मनुष्य हृदयवेदनाको चित्रित कर दे तो वह बहुत दिनोंतक जीवित रह सकती है। कोई बारह सौ वर्ष पहलेके पो चुई नामक किसी चीनी कविने अपनी तीन वर्षकी स्वर्गीय पुत्री स्वर्ण-घंटीके विषयमें एक कविता लिखी थी, वह अब भी जीवित है।

जब कविवर शङ्करजीने क्वाँर सुदी ३ सम्वत् १९८१ को अपनी डायरीमें निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखीं थीं उस समयकी उनकी हार्दिक वेदनाका अनुमान करना भी कठिन है—

"महाकाल रुद्र देवाय नमः

हाय आज क्वार सुदी ३ सम्वत १९८१ वि० बुधवारको दिनके ११ बजे पर प्यारा ज्येष्ठ पुत्र उमाशंकर मुझ बूढ़े बापसे पहले ही स्वर्गको चला गया। हाय बेटा, अब मेरी क्या दुर्गति होगी। प्यारा पुत्र पाँच माससे बीमार था। बहुतेरा इलाज किया कराया कुछ भी लाभ न हुआ। प्यारे पुत्रका क्रोध बढ़ता ही गया, बहुतेरा समझाया, कुछ फल न मिला। मरनेके दिन अच्छा भला बातें कर रहा है। यकायक साँस बढ़ने लगा। चि० हरिशङ्कर और श्यामलाल ऋषिने बोलते बोलते ही अचेत होनेपर ज़मीनपर ले लिया। केवल दो मिनट चुप रहा, दम निकल गया। हाय बेटा! उमाशंकर अब कहाँ!

आज उमाशङ्कर सुत प्यारा, हाय हुआ हम सबसे न्यारा।

१—१०—२४

हे शङ्कर कविराज सुख संकटद्वारा छिना।
निरख दिवाली आज, हाय उमाशङ्कर बिना॥"

संसारमें न जाने कितने अभागे पिताओंपर यह वज्रपात होता है और पुत्रविहीन कितनी दिवालियाँ उन्हें अपने जीवनमें देखनी पड़ती हैं।

जब स्वर्गीय पण्डित पद्मसिंहजी शर्माने महाकवि अकबरके छोटे लड़के हाशमकी बेवक्त मौतपर समवेदनाका पत्र भेजा था तो उसके जवाबमें अकबर साहबने लिखा था:—

"अगरचे हवादसे आलम (सांसारिक विपत्तियोंकी दुर्घटनाएँ) पेशे नज़र रहते हैं और नसीहत हासिल किया करता हूँ, लेकिन हाशम मेरा पूरा कायम-मुकाम (प्रतिनिधि, कवितासम्पत्तिका सच्चा उत्तराधिकारी) तय्यार हो रहा था और मेरे तमाम दोस्तों और कद्र अफजाओंमे मुहब्बत रखता था। उसकी जुदाईका नेचरल तौरपर बेहद कलक हुआ है..."

उस समय अकबरने एक कविता लिखी थी, जिसका एक पद्य यह है—

"आगोरासे सिधारा मुझसे यह कहनेवाला
'अब्बा! सुनाइए तो क्या आपने कहा है'।
अशआर हसरत-आगीं कहनेकी ताब किसको
अब हर नज़र है नौहा, हर सांस मरसिया है।"

कौन अनुमान कर सकता है उस भयंकर हार्दिक वेदनाका जिससे प्रेरित होकर इस पुस्तक (अर्धकथानक) के सम्पादक बन्धुवर श्री नाथूरामजी प्रेमीने ये पंक्तिया लिखी हैं—

"जो अपनी स्वर्गीया जननीके ही समान निष्कपट और साधु-चरित था, जिसने ज्ञानकी विविध शाखाओंका विशाल अध्ययन और मनन किया था, जो शीघ्र ही भारती माताके चरणोंमें अनेक भेंटें चढ़ानेके मनसूबे बाँध रहा था,
परन्तु जिसे दैवने अकालमें ही उठा लिया,
अपने उसी एक मात्र पुत्र **स्व० हेमचन्द्रको**"

मेरे अनुज स्वर्गीय रामनारायण चतुर्वेदी एम. ए. (अध्यापक आगरा कालेज) की आकस्मिक मृत्युपर महात्मा गान्धीजीने सेगाँव वर्धासे लिखा था—

"जो रास्ते रामनारायण गये वही रास्ते हम सबको जाना होगा। समयका ही फरक है। उसमें शोक क्या?"

निस्सन्देह जिस रास्ते उस चीनी कविकी पुत्री '**स्वर्णघंटी**' आजसे बारहसौ वर्ष पहले गई थी, उसी रास्ते भाई **उमाशंङ्करजी** गये, वहीं महाकविका प्यारा पुत्र **हाशम** गया, उसी धामको **हेमचन्द्र** और **रामनारायण** गये और उसी लोककी यात्रा की कविवर बनारसीदासके नौ बालकोंने। केवल भुक्तभोगी ही अनुमान कर सकते हैं दुःखके उस स्रोतका, जहाँसे ये पंक्तियाँ निकली थीं—

"नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ।
ज्यौं तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूँठसे होइ॥"

Inside out (अन्तःकरणका प्रकटीकरण) नामक पुस्तकके लेखकने संसारके ढाई सौ आत्मचरितोंका विश्लेपण करके उक्त पुस्तक लिखी थी और अन्तमें वे इस परिणामपर पहुँचे थे कि सर्वश्रेष्ठ आत्मचरितोंके लिए तीन गुण अत्यन्त आवश्यक हैं—(१) वे संक्षिप्त हों, (२) उनमें थोड़ेमें बहुत बात कही गई हो, (३) वे पक्षपातरहित हों।

अर्ध कथानक इस कसौटीपर निस्सन्देह खरा उतरता है और यदि इसका अँग्रेजी अनुवाद कभी प्रकाशित हो तो हमें आश्चर्य न होगा।

कविवर बनारसीदासजी जानते थे कि आत्मचरित लिखते समय वे कैसा असम्भव कार्य हाथमें ले रहे हैं। उन्होंने कहा भी था कि एक जीवकी चौबीस घंटेमें जितनी भिन्न भिन्न दशाएँ होती हैं उन्हें केवली या सर्वज्ञ ही जान सकता है और वह भी ठीक ठीक तौरपर कह नहीं सकता।—

"एक जीवकी एक दिन दसा होइ जेतीक।
सो कहि न सकै केवला, जानै यद्यपि ठीक॥"

इसी भावको मार्क ट्वेन नामक एक अमरीकन लेखकने इन शब्दोंमें प्रकट किया थाः—

What a very little part of a person's life are his acts and his words! His real life is led in his head and is known to none but himself! All day long and every day, the mill of his brain is grinding and his thoughts, not those other things, are his history. His acts and his words are merely the visible thin crust of his world, with its scattered snow summits and its vacant wastes of water—and they are so trifling a part of his bulk—a mere skin

enveloping it. The most of him is hidden—it and its volcanic fires that toss and boil and never rest, night nor day. These are his life and they are not written, and cannot be written. Every day would make a whole book of eighty thousand words—three hundred and sixty five books a year. Biographies are but the clothes and buttons of the man. The biography of the man himself cannot be written."

इसका सारांश यह है " मनुष्यके कार्य्य और उसके शब्द उसके वास्तविक जीवनके, जो लाखों करोड़ों भावनाओंद्वारा निर्मित होता है, अत्यल्प अंश हैं। अगर कोई मनुष्यकी असली जीवनी लिखनी शुरू करे तो एक एक दिनके वर्णनके लिये कमसे कम अस्सी हजार शब्द तो चाहिए और इस प्रकार साल भरमें तीनसौ पैंसठ पोथे तय्यार हो जावेंगे ! छपनेवाले जीवनचरितोंको आदमीके कपड़े और बटन ही समझना चाहिये, किसीका सच्चा जीवनचरित लिखना तो सम्भव नहीं।"

फिर भी छसौ पचहत्तर दोहा और चौपाइयोंमें कविवर बनारसीदासजीने अपना चरित्र चित्रण करनेमें काफी सफलता प्राप्त की है और जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं उनके इस ग्रन्थमें अद्भुत संजीवनी-शक्ति विद्यमान् है। उनके साम्प्रदायिक ग्रन्थोंसे यह कहीं अधिक जीवित रहेगा।

यद्यपि हमारे प्राचीन ऋषि महर्षि 'आत्मानं विद्धि' (अपनेको पहचानो) का उपदेश सहस्रों वर्षोंसे देते आ रहे हैं पर यह सबसे अधिक कठिन कार्य्य है और इससे भी अधिक कठिन है अपना चरित्र–चित्रण। यदि लेखक अपने दोषोंको दबाके अपनी प्रशंसा करे तो उसपर अपना ढोल पीटनेका इलज़ाम लगाया जा सकता है और यदि वह खुल्लमखुल्ला अपने दोषोंका ही प्रदर्शन करने लगे तो छिद्रान्वेषी समालोचक यह कह सकते हैं कि लेखक बनता है और उसकी आत्म-निन्दा मानों पाठकोंके लिये निमंत्रण है कि वे लेखककी प्रशंसा करें !

अपनेको तटस्थ रखकर अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मोंपर दृष्टि डालना, उनको विवेककी तराजूपर बावन तोले पाव रत्ती तौलना, सचमुच एक महान् कलापूर्ण कार्य्य है। आत्मचित्रण वास्तवमें 'तरवारकी धार पै धावनो है' पर इस कठिन प्रयोगमें अनेक बड़ेसे बड़े कलाकर भी फेल हो सकते हैं

और छोटेसे छोटे लेखक और कवि अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकते हैं। बहुत सम्भव है कि महाकवि तुलसीदासजीको जो कविवर बनारसीदासजीके समकालीन थे, आत्मचरित लिखनेमें उतनी सफलता न मिलती जितनी बनारसीदासजीको मिली। यदि किसी चित्र खिंचवानेवालेको तस्वीर देते समय विशेषरूपसे आत्म-चेतना हो जाय तो उसके चेहरेकी स्वाभाविकता नष्ट हो जायगी। उसी प्रकार आत्मचरित लेखकका अहंभाव अथवा 'पाठक क्या ख़याल करेंगे' यह भावना उसकी सफलताके लिये विघातक हो सकती है।

आत्मचित्रणमें दो ही प्रकारके व्यक्ति विशेष सफलता प्राप्त कर सकते हैं या तो बच्चोंकी तरहके भोलेभोले आदमी, जो अपनी सरल निरभिमानतासे यथार्थ बातें लिख सकते हैं अथवा कोई फक्कड़ जिन्हें लोक लज्जासे कोई भय नहीं।

फक्कड़शिरोमणि कविवर बनारसीदासजीने तीनसौ वर्ष पहले आत्मचरित लिखकर हिन्दीके वर्तमान और भावी फक्कड़ोंको मानों न्यौता दे दिया है। यद्यपि उन्होंने विनम्रतापूर्वक अपनेको कीट पतंगोंकी श्रेणीमें रक्खा है (हमसे कीट पतंगकी बात चलावै कौन) तथापि इसमें सन्देह नहीं कि वे आत्म-चरित-लेखकोंमें शिरोमणि हैं।

एक बात और। कविवर बनारसीदासजीने सम्वत् १६७० में हमारे जन्मस्थान फीरोज़ाबादमें गाड़ी भाड़े की थी और इस प्रकार हमारे घरके एक मज़दूरको आर्थिक लाभ पहुँचाया था। आज तीनसौ तीस वर्ष बाद उसी फीरोज़ाबादका निवासी कलमका एक मज़दूर उन्हें यह श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहा है।

फीरोजाबाद, ज़िला आगरा } **बनारसीदास चतुर्वेदी**

निवेदन—बहुत विलम्बसे प्राप्त होनेके कारण विषय-सूचीमें इस लेखका नाम निर्देश न किया जा सका और पृष्ठाङ्क भी इसके अलगसे देने पड़े। श्रद्धेय चतुर्वेदी-जीने मुद्रणकथामें धन्यवाद देनेका मौका भी मुझे न दिया। पुस्तक पहले ही छप चुकी थी।

—सम्पादक

भूमिका

आत्मकथा

कविवर बनारसीदासजीकी यह निज-कथा या आत्म-कथा हिन्दी साहित्यमें एक अनोखी रचना है। जहाँ तक मैं जानता हूँ इस देशकी अन्य भाषाओंमें भी इस तरहकी और इतनी पुरानी और कोई आत्म-कथा नहीं है। अभी तक तो सर्व साधारणका यही खयाल है कि यह चीज हमारे यहाँ विदेशोंसे आई है और वहींकी आत्मकथाओंके अनुकरणपर यहाँ आत्मकथायें लिखनेका प्रचार हुआ है, परन्तु अबसे तीनसौ वर्ष पहले यहाँके एक हिन्दी कविने भी अपनी आत्मकथा लिखी थी, इस बातपर इसे देखे बिना सहसा कोई विश्वास नहीं कर सकता। यद्यपि इस समय जिस ढंगकी आत्मकथायें लिखी जाती हैं, उनमें और अर्धकथानकमें बहुत अन्तर है, फिर भी इसमें आत्मकथाओंके प्रायः सभी गुण मौजूद हैं और भारतीय साहित्यमें यह एक गर्व करनेकी चीज़ है। इसमें कविने अपने गुणोंके साथ साथ दोषोंका भी उद्घाटन किया है और सर्वत्र ही सचाईसे काम लिया है।

अर्ध कथानककी भाषा

अर्ध कथानककी भाषाको कविने 'मध्य देशकी बोली' कहा है—

मध्यदेशकी बोली बोलि।
गरभित बात कहौं हिय खोलि॥

बोलीका मतलब उस समयकी बोलचालकी भाषा है, साहित्यिक भाषा नहीं। बनारसीदासजी उच्च श्रेणीके कवि थे, उनकी अन्य रचनायें साहित्यिक भाषामें ही हैं परन्तु अपनी इस आत्म-कथाको उन्होंने विना आडम्बरकी सीधी सादी भाषामें लिखा है, जिसे सर्वसाधारण सुगमतासे समझ सकें। यद्यपि

इस रचनामें भी उनकी स्वाभाविक कवित्व-शक्तिका परिचय मिलता है, परन्तु वह अनायास ही प्रकट हो गई है, उसके लिए प्रयत्न नहीं किया गया। इस रचनासे हमें इस बातका आभास मिलता है कि उस समय, अबसे लगभग तीनसौ वर्ष पहले, बोलचालकी भाषा, किस ढंगकी थी और जिसे आजकल खड़ी बोली कहा जाता है, उसका प्रारंभिक रूप क्या था।

गद्य और पद्यकी भाषामें हमेशा अन्तर रहा है, और चूँकि यह पद्यकी भाषा है, फिर भी इसमें खड़ी बोलीके प्रयोग विपुलतासे पाये जाते हैं। नीचे लिखे उद्धरणोंमें रेखांकित प्रयोगोंको देखिए—

पद्य सं० ६—भावी दसा होएगी जथा, ग्यानी जानै तिसकी कथा।

४५—जैसा घर तैसी नन्हसाल।

६०—हूआ हाहाकार।

६३—एहि बिधि राय अचानक मुआ, गांउ गांउ कोलाहल हुआ।

१९१—तू मुझ मित्र समान।

२०८—चहल पहल हूई निज धाम।

२१४—पकरे पाइ लोभके लिए।

२१६—बरस एक जब पूरा भया, तब बनारसी द्वारै गया।

२३९—केई उबरे केई मुए, केई महा जहमती हुए।

२८२—घरका माल किया एकठा।

३०६—जैसा कातै तैसा बुनै, जैसा बोवै तैसा लुनै।

३१६—बात उहांकी जानै राम।

३२१—मूसा ले गया काटि।

३३१—कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत।
पूंजी खोई बेहया, गया बनजका सूत॥

३६४—जो पाया सो खाया सर्व।

४०५—तुमसौं बोलै ऐसा कौन।

४११—आगे और न भाड़ा किया।

५३८—भावी अमिट हमारा मता, इसमें क्या गुनाह क्या खता।

५४६—कही जु होना था सो हुआ।

५६४—अंगा चंगा आदमी, सज्जन और विचित्र।

६५३—घरसौं हुआ न चाहै जुदा।

उस समय उर्दू-फारसी आदिके शब्द बोलचालमें कितने आ गये थे, इसका पता भी इस पुस्तकसे लगता है। स्मरण रखना चाहिए कि ये शब्द प्रयत्नपूर्वक नहीं लाये गये हैं। जैसे—

फारकती (५४), दिलासा (५४), कारकुन (५६), मुश्किल (१५८), दरदबंद (१७१), दरवेश (१९९), रद्दी (२३७), शोर (२५१), तहकीक (३००), रफ़ीक़ (३१०), इजार (३१९), फरजंद (३४४), पेशकशी (३५५), गश्त (३५५), मशक्कत (३६४), फारिग (४०३), सिताब (४९६), नफर (४९८), अहमक (५२२), गुनाह (५३८), खता (५३८), खुशहाल (५४७), नखासा (५७१), कौल (५८५), हेच (५९४), पैजार (६०४)।

लोकोक्तियाँ भी अर्ध कथानककी रचनामें यत्र तत्र पाई जाती हैं जो बोलचालकी भाषाको सुन्दर और हृदयग्राही बना देती हैं, यथा—

१—जैसी मति तैसी गति होइ। (१३४)

२—रहे न कुसल न भागे खेम, पकरी सांप छछूंदरि जेम॥ (१५८)

३—बहुत पढ़ैं बांभन अरु भाट, बनिक पुत्र तो बैठैं हाट।
बहुत पढ़ै सो मांगै भीख, मानहु पूत बड़ेनिकी सीख॥ (२००)

४—साहिब सेवक एकसे। (२३७)

५—नदी नाव संजोग ज्यौं, बिछुरि मिलै नहिं कोइ। (२४३)

६—निकसी घोंघी सागर मथा, भई हींगवालेकी कथा[1]।
लेखा किया रूखतल बैठि, पूंजी गई गाड़िमैं पैठि॥ (३६५)

७—एक बार ए दोऊ कथा, संडासी लुहारकी जथा॥ (४४२)

८—घोरा दौरहि खाइ सवार, ऐसी दसा करी करतार॥ (४४८)

९—भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद॥ (५९५)

---

१ हींग पजी सो घोरन्ह खाई।

कवि-जीवनकी कुछ विशेष बातें

धनी मानी कुल

बनारसीदासजी एक धनी और सम्मान्य कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके प्रपितामह जिनदासजीका साका चलता था, पितामह मूलदासजी हिन्दी और फारसीके पंडित थे और वे नरवर (मालवा) में वहाँके मुसलमान नव्वाबके मोदी होकर गये थे। उनके मातामह मदनसिंह चिनालिया जौनपुरके नामी जौहरी थे और पिता खड्गसेन कुछ समय तक बंगालके सुल्तान लोदीखांके पोतदार रहे थे और फिर वे भी जवाहरातका व्यापार करने लगे थे। इसी तरह उनके रिश्तेदार और मित्रगण भी धनी मानी थे। फिर भी उनका जीवन सुखसे नहीं बीता। चैनसे बैठना शायद उनके भाग्यमें था ही नहीं। धनके लिए वे प्रायः जीवन-भर दौड़-धूप करते रहे और तरह तरहके कष्ट झेलते रहे। इस दौड़-धूप और कष्टोंका उन्होंने बड़ा ही विशद और हृदय-ग्राही वर्णन किया है।

अधिकारियोंके अत्याचार

उस समय राज्यके अधिकारियोंकी ओरसे प्रजापर और धनी व्यापारियोंपर कितने अत्याचार होते थे और प्रजा कितनी डरपोंक और प्रतिकारकी भावनासे शून्य हो गई थी, इसपर भी इस आत्मकथासे प्रकाश पड़ता है। उस समयके मुसलमान इतिहास-लेखकोंने जिनको छुआ भी नहीं है ऐसी अनेक बातें इस पुस्तकसे जानी जाती हैं।

विद्या-शिक्षा और प्रतिभा

कविका ब्याह केवल ग्यारह वर्षकी उम्रमें हो गया था। आठ वर्षकी अवस्थामें उन्होंने पांड़ेके पास विद्या पढ़ना शुरू किया और एक वर्षमें वे व्युत्पन्न

---

१ सकबन्धी सांचो सिरीमाल जिनदास सुन्यौ,
ताके बंस मूलदास बिरद बढ़ायौ है।
ताके बंस छितिमैं प्रगट भयौ खरगसेन,
बनारसीदास ताके अवतार आयौ है॥ ४९—ज्ञानबावनी

२ पढ़्यौ हिंदुगी पारसी, भागवान बलवान॥ १३॥

हो गये। इसके बाद चौदह वर्षके होने पर पं० देवदत्तके पास उन्होंने नाममाला, अनेकार्थ, ज्योतिष, अलंकार, कोकशास्त्र और चार सौ फुटकर श्लोक पढ़े और मुनि भानुचन्द्रजीसे पंच सन्धि, छन्द, कोश और जैनधर्मके स्तवन, सामायिक, प्रतिक्रमणादि पाठ भी सीखे। इस तरह उन्होंने पढ़ा तो कुछ अधिक नहीं; परन्तु अपनी स्वाभाविक प्रतिभाके कारण आगे चलकर वे अच्छे विचारक और सुकवि हो गये। कवित्व-शक्ति तो जान पड़ता है उन्हें जन्मसे ही मिली थी। तभी न चौदह वर्षकी अवस्थामें ही उन्होंने एक हजार दोहा चौपाइयोंका नवरस ग्रन्थ बना डाला था जो कि आगे चलकर गोमतीमें बहा दिया गया। संस्कृत प्राकृतके सिवाय वे अनेक देशभाषायें भी जानते थे[1]।

इश्कबाज़ी

जिस तरह उनकी कवित्व-शक्तिका विकास समयसे बहुत पहले हो गया उसी तरह उनका यौवन भी जल्दी ही विकसित हुआ। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही वे इश्कमें पड़ गये और इस इश्कबाज़ीने उनके गार्हस्थ्य-जीवनको सदाके लिए अत्यन्त दुःखपूर्ण बना दिया। अपनी ससुराल खैराबादमें वे जिस रोगसे आक्रान्त हुए, उसके विवरणसे स्पष्ट मालूम होता है कि वह गर्मी या उपदंश (सिफलिस) रोग था और उसीका यह परिणाम हुआ कि उनके नौ बच्चे एकके बाद एक हुए परन्तु उनमेंसे एक भी नहीं बचा, सब अल्पायुमें ही मर गये और दो स्त्रियाँ प्रसूति-कालमें ही कालके गालमें चली गईं।

बहम और अन्धविश्वास

आजकल हमारे यहाँ जिस तरह बहमों और अन्धविश्वासोंका साम्राज्य है उसी तरह उस समय भी था और जैन समाज भी उससे मुक्त नहीं था। रोहतक (पंजाब) की सती उन दिनों बहुत प्रसिद्ध थी। दूरदूरके लोग उसकी मानताके लिए जाते थे। बनारसीदासजीके पिता खरगसेन भी अपनी पत्नी सहित दो बार उसकी यात्राके लिए गये थे और उनकी दादीको तो पूरा विश्वास था कि बनारसीका जन्म उक्त सतीके ही प्रसादसे हुआ है। उधर काशीमें पार्श्वनाथके यक्षने पुजारीको प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा था कि इस लड़केका नाम पार्श्व-जन्मस्थान (बनारस) के नामपर रख देनेसे इसके लिए फिर कोई चिन्ता न रहेगी, यह चिरजीवी होगा।

---

१ पढ़ै संसकृत प्राकृत सुद्ध, बिबिधदेसभासाप्रतिबुद्ध। ६४८

अपनी पूर्वावस्थामें स्वयं बनारसीदासजी भी इस तरहके बहमोंके शिकार हुए थे। जैनधर्मके अनुयायी होते हुए भी वे एक जोगीके कहनेसे एक साल तक सदाशिवके शंखकी पूजा करते रहे, और एक संन्यासीके दिये हुए मंत्रका जाप उन्होंने इस आशासे लगातार एक साल तक पाखानेमें बैठकर किया कि, जाप पूरा होनेपर हररोज दरवाजेपर एक दीनार पड़ा हुआ मिला करेगा! इन दोनों घटनाओंका कविने बड़ा मजेदार वर्णन किया है।

अकबरकी लोकप्रियता

मुग़ल बादशाह अकबर कितने लोकप्रिय थे, और उस समय प्रजा अपने राजाको कितना अपना समझती थी इस बातका पता इस बातसे लगता है कि उनकी मृत्युका समाचार सुनकर बनारसीदासको गश आ गया, वे सीढ़ी परसे लुढ़क पड़े और उनका सिर फूट कर रक्त बहने लगा!

चीनी किलीचखाँका विद्याप्रेम

नवाब किलीचखाँका बड़ा बेटा चीनी किलीचखाँ बहादुर होनेके सिवाय दाता और पंडित भी था। बनारसीदासजीको वह बहुत चाहता था और उनसे नाममाला आदि कोश और श्रुतबोध आदि छन्दो ग्रन्थ पढ़ता था। उसने सिरोपाव देकर उनका सत्कार भी किया था। इससे मालूम होता है कि मुसलमान शासक इस देशके साहित्यसे और साहित्य-सेवियोंसे प्रेम रखते थे और आदरपूर्वक पठन पाठन भी करते थे। विदेशी बने रहकर वे केवल अरबी फारसीकी माला नहीं जपते रहते थे।

सस्ती कचौड़ियाँ

उस समय मुगल-साम्राज्यकी राजधानी आगरेमें चीजें कितनी सस्ती मिलती थीं, इसका अन्दाज इस बातसे हो सकता है कि बनारसीदासजी एक कचौड़ीवालेके यहाँ छह सात महीने तक दोनों वक्त भरपेट कचौड़ियाँ खाते रहे और जब उसका हिसाब किया तो उन्हें केवल चौदह रुपये देने पड़े! अर्थात् लगभग एक आने रोजमें उस समय राजधानीके शहरमें भी उच्चश्रेणीका भोजन मिल जाता था।

---

१ मूलमें 'छरछोभी शब्द है। पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदीसे मालूम हुआ कि आगरेके आसपास कहीं कहीं अब भी यह शब्द पाखानेके अर्थमें प्रचलित है। सागर जिलेकी देहातमें छरछोभीके बदले 'छाबछोरी' प्रचलित है।

जनेऊकी कथा

एक बार बनारसीदास अपने मित्र और मित्रके ससुरके साथ पटना जा रहे थे कि एक चोरोंके गाँवमें पहुँच गये। चोर ब्राह्मणोंको नहीं सताते थे, इसलिए इन तीनोंने उसी समय सूतसे जनेऊ बनाकर पहिन लिये और उन्हें आशीर्वाद दिया। फल यह हुआ कि चोरोंके चौधरीने ब्राह्मण समझकर इन्हें आरामसे ठहराया और दूसरे दिन बिदा कर दिया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय जैन श्रावक जनेऊ नहीं पहनते थे।

बनारसीदासजीका सम्प्रदाय

बनारसीदासजीका जन्म श्रीमाल कुलमें हुआ था और इस लिए वे जन्मसे श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी थे। श्रीमाल जाति अब भी प्रायः इसी सम्प्रदायकी अनुगामिनी है। उनके गुरु भानुचन्द्रजी खरतरगच्छकी लघुशाखाके साधु थे जिनका स्मरण उन्होंने अपनी अनेक रचनाओंमें किया है। उनके अधिकांश संगी साथी और रिश्तेदार भी श्वेताम्बर थे। वि० सं० १६८० तक वे इसी सम्प्रदायके श्रावक रहे। स्नात्रविधि (अभिषेक), सामायिक, पडिकोना (प्रतिक्रमण), अस्तोन (स्तवन) आदि श्वेताम्बर सम्प्रदायगत क्रियाकाण्डके पाठोंको उन्होंने पढ़ा था और पौसाल या उपासरेमें वे नित्यप्रति जाया करते थे। १६८० के पहलेकी उनकी रचनाओंमें भी कहीं कहीं श्वेताम्बरत्वकी झलक दिखलाई देती है[1]।

---

१ उदाहरणके लिए अर्धकथानकका ५८३ नं० का छप्पय ले लीजिए। उसमें शान्ति-कुन्थु-अरनाथके माता-पिताके नाम श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुसार हैं। दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार अरनाथकी माताका नाम मित्रा और लांछन मत्स्य होना चाहिए। इसी तरह राग आसावरी (बनारसीविलास पृ०२६६) का प्रसन्नचन्द्र-ऋषिका उल्लेख भी श्वे० स० के अनुसार जान पड़ता है। दिगम्बर कथाकोशोंमें या अन्य कथाग्रन्थोंमें प्रसन्नचन्द्रकी कथा नहीं है। परन्तु श्वेताम्बर कथाकोशोंमें प्रसन्नचन्द्र और बल्कलचीरिनकी कथा सुलभ है। 'कुमारपाल-प्रतिबोध' (पृ० २८४–९२) में भी है।

१६७० में लिखे हुए 'अजितनाथके छन्द' में 'खैराबाद-मंडन' की स्तुति है, जो खैराबादके श्वेताम्बर मन्दिरकी मुख्य प्रतिमाको लक्ष्य करके है।

खैराबादमें बनारसीदासजीकी ससुराल थी। वहाँके अर्थमलजी ढोर नामक सज्जनको अध्यात्म-चर्चासे बड़ा प्रेम था। वे थे तो श्वेताम्बर परन्तु समयसार नाटकके जानकार थे। उन्होंने वि० सं० १६८० में उक्त ग्रन्थकी राजमल्ली टीका (बालावबोध) की एक प्रति लिखकर दी और बनारसीदासजीसे कहा कि इसे पढ़िए, इससे 'सत्य' क्या है सो समझमें आ जायगा। समयसारके पढ़नेका फल यह हुआ कि वे शुद्ध निश्चयनयावलम्बी या अध्यात्मी बन गये और उन्हें करनी या क्रियाकाण्डमें कोई रस नहीं रह गया। जप तप, सामायिक प्रतिक्रमण, पूजा-पाठ आदि सब कुछ छोड़ दिया और लगभग बारह वर्षतक उनकी और उनके अभिन्न हृदय मित्र चन्द्रभान, उदयकरन, थानसिंहकी बड़ी ही विचित्र अवस्था रही, लोग उन्हें खोसरामती (?) कहने लगे।

संवत् १६९२ में पं० रूपचन्दजी आगरे आये और सारे अध्यात्मियोंने मिलकर उनसे गोम्मटसार ग्रन्थ बँचवाया जिसमें उन्होंने गुणस्थानोंके अनुसार ज्ञान और क्रिया-विधान समझाकर निश्चय और व्यवहारका सामंजस्य स्थापित किया। इससे उनकी आँखें खुल गईं और उनके विचार स्याद्वाद-परणतिमें परिणमित हो गये। इसके बाद सं० १६९३ में उन्होंने नाटक समय-सारको छन्दोबद्ध किया जो दोनों ही सम्प्रदायोंमें बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है।

यद्यपि कविवर बनारसीदासने अपनी आत्मकथामें इस बातका कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है कि उन्होंने किसी समय अपना सम्प्रदाय परिवर्तन किया था या वे श्वेताम्बरसे दिगम्बर हो गये थे, उन्होंने आपको और अपने साथियोंको 'अध्यातमी' ही लिखा है। परन्तु पं० रूपचन्दजी चूँकि दिगम्बरी थे और समयसार-गोम्मटसार भी दिगम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थ हैं इस लिए यह स्वाभाविक है कि उनका झुकाव दिगम्बर मतकी ओर ही अधिक हो गया हो और इसके सुबूतमें हम जिन-प्रतिमा और जैनसाधुओंके सम्बन्धकी उनकी नीचे लिखी पंक्तियाँ पेश कर सकते हैं—

जिन प्रतिमा जिनसारखी, कही जिनागममाहिं।
पै जाके दूसन लगे, बंदनीक सो नाहिं॥ १॥

---

१ बानारसी बिहोलिया अध्यातमी रसाल॥ ६७१ —अर्धकथानक

२ 'कर्मप्रकृतिविधान'की रचना गोम्मटसारके ही आधारसे की गई है और इसका उसमें उल्लेख भी किया गया है।

जाके तिय-संगति नहीं, नहिं बसन न भूसन।
सो छबि है सरवग्यकी, निरमल निरदूसन ॥ ३ ॥

—बनारसीविलास पृ० २३४

भूमिसयन मंजन तजन, असनत्याग कच-लोच।
एक बार लघु असन थिति-असन दंतवन-मोच ॥ ३ ॥
लोकलाजविगलित भयहीन, विषयवासनारहित अदीन।
नगन दिगंबर मुद्रा धार, सो मुनिराज जगतसुखकार ॥२०॥

—साधुबन्दना

फिर भी उन्होंने कहींपर श्वेताम्बर सम्प्रदायका स्पष्टरूपसे, विरोधके लिए ही विरोध, नही किया है और अपने पहलेके श्वेताम्बर गुरु भानुचन्द्र-जीके प्रति उनकी श्रद्धा अन्त तक बनी रही है, यहाँ तक कि समयसारकी प्रशस्तिमें भी उन्होंने अपनेको भानुचन्द्रका शिष्य ही कहा है—" भाषा कवित भानके सीस (शिष्य)। "

सुप्रसिद्ध श्वेताम्बराचार्य यशोविजयजीने बनारसीदासजीके मतको जैसा कि आगे बतलाया गया है ' साम्प्रतिक अध्यात्ममत ' कहा है और महो-पाध्याय मेघविजयजीने ' आध्यात्मिक ' या ' बाणारसीय ' कहा है। उनके ग्रन्थोंसे मालूम होता है कि उक्त विद्वान् बनारसीदासजीको दिगम्बरसम्प्रदायभुक्त मानते हुए भी सर्वथा दिगम्बर नहीं मानते थे, बल्कि दिगम्बर सम्प्रदायके एक नये ही पन्थका प्रवर्तक समझते थे।

अब हमें देखना चाहिए कि यह साम्प्रतिक या नया हालका सम्प्रदाय कौन-सा था और इसे श्वेताम्बर विद्वानोंने सर्वथा दिगम्बर सम्प्रदाय क्यों नहीं माना ?

ऐसा जान पड़ता है कि उस समय दिगम्बरसम्प्रदायमें निर्वस्त्र निर्ग्रन्थ साधुओंका प्रायः अभाव था और उनके स्थानपर परिग्रहधारी मठाधीश माने पूजे जाते थे। अधिकांश लोग तात्त्विक और दार्शनिक जैन धर्मको भूलकर उसके बाहरी क्रियाकाण्डको ही सब कुछ समझ रहे थे। धर्मशास्त्रोंपर भट्टारकोंका ही एकाधिपत्य था। गृहस्थ श्रावक तो चुपचाप उनकी आज्ञाका पालन करनेवाले भक्त प्राणी थे। परन्तु चूँकि बनारसीदासजी विद्वान् थे, समयसार-गोम्मटसार आदि तात्त्विक ग्रन्थोंके मर्मज्ञ थे और साथ ही इतने

साहसी भी थे कि बारह वर्षतक, किसीकी भी परवा किये बिना, केवल निश्चय नयको पकड़े हुए, डटे रहे, इसलिए यदि उन्होंने दिगम्बर सम्प्रदायके आदर्शसे विरुद्ध चर्या रखनेवाले परिग्रहधारी भट्टारकोंको और उनके द्वारा प्रवर्तित बाह्य आडम्बरोंको माननेसे इंकार कर दिया हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। और इसीलिए यशोविजय और मेघविजयजीने यदि उन्हें सर्वथा दिगम्बर न मानकर एक नये पन्थका प्रवर्तक बतलाया, तो हम उनका अभिप्राय समझ सकते हैं।

जैसा कि मैं अपने ' वनवासी और चैत्यवासी सम्प्रदाय ' शीर्षक लेखमें विस्तारके साथ लिख चुका हूँ[1] बनारसीदासजीका ' अध्यात्म मत ' ही आगे चलकर दिगम्बर सम्प्रदायके तेरह पंथके रूपमें विकसित हुआ और उसने शिथिलाचारी भट्टारकोंके विरुद्ध विद्रोह करके उनके एकाधिपत्यको जड़से उखाड़कर फेंक दिया।

उस समयतक अधिकाश ग्रन्थ-रचना प्रायः संस्कृत प्राकृत या अपभ्रंशमें हुआ करती थी और इस कारण साधारण श्रावक उससे विशेष लाभ नहीं उठा सकते थे। परन्तु बनारसीदासजी और उनके अनुगामियोंने प्रचलित देश भाषाको विशेष रूपसे अपनाया जिससे जैनधर्मके तात्त्विक स्वरूपका ज्ञान सर्वसाधारणमें बढ़ा और उसने भट्टारकोंके प्रभावको धीरे धीरे क्षीण करना शुरू कर दिया।

धर्म-चर्चाकी प्रवृत्ति भी बढ़ी। धर्मचर्चा करनेवाले श्रावकोंकी गोष्ठियोंको उस समय ' सैली ' या ' ज्ञानियोंकी मंडली ' कहते थे। बनारसीविलासके संग्रहकर्ता जगजीवनने अपनी मंडलीका उल्लेख किया है[2] और उनके बाद पं० द्यानतरायजी (वि० सं० १७३३–८०) ने आगरेमें मानसिंह जौहरीकी और दिल्लीमें सुखानन्दजीकी सैलीकी चर्चा की है[3]।

इन सैलियोंके प्रसादसे आगरा, दिल्ली, जयपुर आदिमें बीसों गृहस्थ

---

१ देखो, ' जैनसाहित्य और इतिहास ' पृ० ३४७–६९।

२ समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ, ज्ञानिनकी मंडलीमैं जिसकौ विकास है। —बनारसीविलास

३ आगरेमैं मानसिंह जौहरीकी सैली हुती,
दिल्लीमाहिं अब सुखानन्दजीकी सैली है॥ —धर्मविलास

विद्वान् हुए और उनमेंसे अनेकोंने देश भाषामें ग्रन्थ रचना करके संस्कृत-प्राकृतमें आवद्ध जैनधर्मके ज्ञानको सर्वसाधारणके लिए मुक्त कर दिया।

बानारसी-मतके समालोचक

१ महोपाध्याय यशोविजयजी श्वेताम्बर सम्प्रदायके बहुत बड़े विद्वान् हो गये हैं। उनका लिखा हुआ विपुल साहित्य उपलब्ध है। उनके दो ग्रन्थ 'अध्यात्ममत-परीक्षा'[1] और 'अध्यात्ममत-खण्डन'[2] बानारसी मतके विरोधमें ही लिखे गये हैं। पहले ग्रन्थमें १८४ प्राकृत गाथायें स्वोपज्ञ संस्कृतटीकासे युक्त हैं और दूसरा ग्रन्थ केवल १८ संस्कृत श्लोकोंका है और उसकी भी स्वोपज्ञ संस्कृतटीका है।

पहले ग्रन्थमें जैनसाधु उपकरण नहीं रखते, वस्त्र धारण नहीं करते, केवली आहार नहीं लेते, उन्हें नीहार भी नहीं होता, स्त्रियोंको मोक्ष नहीं, आदि दिगम्बरमान्य सिद्धान्तोंका खंडन किया है, और अध्यात्मके नाम अध्यात्म, स्थापना अध्यात्म, द्रव्य अध्यात्म और भाव अध्यात्म ये चार भेद करके उन्होंने इस मतको 'नाम अध्यात्म' संज्ञा दी है। एक जगह कहा है कि जो उन्मार्ग प्ररूपणा करके बाह्य क्रियाओंका लोप करता है वह बोधि (दर्शन-ज्ञान-चरित्र) के बीजका नाश करता है।[3]

दूसरे ग्रन्थमें मुख्यतः केवलीके कवलाहारका प्रतिपादन किया गया है और उसके अन्तमें लिखा है कि मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयके कारण जो विपरीत प्ररूपणा करते हैं ऐसे दिगम्बरों और उनके अनुयायी आध्यात्मिकोंको दूरसे ही छोड़ देना चाहिए, ऐसा हमारा हितोपदेश है। इस तरह साम्प्रतकालमें उत्पन्न हुए आध्यात्मिक मतको नष्ट करनेमें दक्ष यह ग्रन्थ रचा गया।[4]

---

१ आत्मानन्द जैन सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित। २ जैनधर्मप्रसारक सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित, यशोविजय-ग्रन्थ-मालाकी पहली जिल्द।

३ लुंपइ वज्झं किरिअं जो खलु अज्झप्पभावकहणेणं।
सो हणइ बोहिबीजं उम्मग्गपरूवणं काउं ॥ ४२ ॥

४ मिथ्यात्वमोहनीयकर्मोदयवशाद्विपरीतप्ररूपणाप्रवणा दिगम्बराः तन्मतानुयायिनश्चाध्यात्मिका दूरतः परिहरणीया इत्यस्माकं हितोपदेश इति ॥१६॥
एवं साम्प्रतमुद्भवदाध्यात्मिकमतनिर्दलनदक्षम्।
रचितमिदं स्थलममलं विकचयतु सतां हृदय कमलम् ॥ १७ ॥

पूर्वोक्त दो संस्कृत प्राकृत ग्रन्थोंके सिवाय यशोविजयजीने एक छोटा-सा ग्रन्थ 'दिक्पट चौरासी बोल' नामका भाषा छन्दोबद्ध भी लिखा है, जो पंडित हेमराजजीके 'सितपट चौरासी बोल' का उत्तर है। यह भी 'नाम अध्यातमी' अर्थात् बनारसीदासजीके पन्थके विरोधमें लिखा गया है।

इन तीनों ही ग्रन्थोंमें रचना-काल नहीं दिया गया है परन्तु श्री कान्तिविजय गणिने जो कि यशोविजयजीके समकालीन थे अपनी 'सुजसबेलि भास' नामक गुजराती पुस्तकमें लिखा है कि यशोविजयजीने वि० सं० १६९९ में जब अह-मदाबाद (राजनगर) में अष्टावधान किये तब उनकी योग्यता देखकर एक धनी गृहस्थने उनके विद्याभ्यासके लिए धन देना स्वीकार किया और तब वे बनारस गये। वहाँ उन्होंने तीन वर्ष विविध दर्शनोंका अध्ययन किया और फिर उसके बाद आगरेमें आकर एक न्यायाचार्यके पास चार वर्ष तक कर्कश तर्क-ग्रन्थ पढ़े। अर्थात् कान्तिविजयजीके अनुसार वि० सं० १७०३-४ से १७०७-८ तक यशोविजयजी आगरेमें रहे थे। जान पड़ता है तभी उनको बनारसी मतका परिचय हुआ होगा और इसी बीचमें या इसके बाद उन्होंने अपने उक्त ग्रन्थ लिखे होंगे। बाद कहनेका कारण यह है कि सुजस-बेलि भासके अनुसार विजयप्रभ सूरिने सं० १७१८ में यशोविजयजीको वाचक या उपाध्यायपद दिया था और दिक्पट चौरासी बोलमें उन्होंने

---

१ देखो, श्रीयशोविजयोपाध्यायरचित गूर्जरसाहित्यसंग्रह, प्रथम भाग, पृ० ५७२-९७। २ ब्रजभाषा होनेपर भी इसमें गुजरातीपन बहुत है और छपी भी बहुत अशुद्ध है।

३ हेमराज पांडे किए, बोल चुरासी फेर।
या बिधि हम भाषावचन, ताकौ मत किय जेर॥ १५९॥

पं० हेमराजने प्रवचनसारकी भाषा टीका सं० १७०९ में और गोम्मटसार तथा नयचक्रकी वचनिका सं० १७२४ में समाप्त की थी।

४ जैन कहावैं नामतैं, तातैं बढ्यौ अंकूर।
तनु मल ज्यौं फुनि संतनै, कियौ दूरतैं दूर॥ १०॥
भस्मकग्रह रजभसम मय, तातैं बेसर रूप।
उठे 'नाम अध्यातमी,' भरम जाल अंधकूप॥ ११॥

५ प्रकाशक—ज्योतिकार्यालय, रतनपोल, अहमदाबाद।

अपनेको ' वाचक जस ' लिखा है । इस लिए कमसे कम यह पिछली पुस्तक तो वि० सं० १७१८ के बाद ही लिखी गई होगी । पं० हेमराजजीके समयको देखते हुए भी यह ठीक मालूम होता है ।

२ महोपाध्याय मेघविजयजी भी एक नामी विद्वान् हो गये हैं । उन्होंने वानारसी मतका खण्डन करनेके उद्देश्यसे ' युक्तिप्रबोध ' नामका २५ गाथाओंका प्राकृत ग्रन्थ रचा और उसपर स्वयं ४५०० श्लोकोंकी विस्तृत संस्कृत-टीका भी लिखी । इस ग्रन्थके उद्धरण हम परिशिष्टमें दे रहे हैं, जिनसे मालूम होता है कि

क—बनारसीदासजीके अनुयायी बानारसिया अपनेको ' अध्यातमी ' कहते थे और उग्रसेनपुर या आगरेमें उन्होंने अनेक भव्यजनोंको विमोहित कर लिया था । संवत् १६८० में यह मत उत्पन्न हुआ ।

ख—बनारसीदास लघुशाखीय खरतरगच्छके श्रावक थे और श्रीमाल वणिक कुलमें उत्पन्न हुए थे ।

ग—पहले उनकी धर्ममें रुचि थी, वे सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रोषध तप, उपधानादि करते थे, जिनपूजन, प्रभावना, वात्सल्य, साधुवन्दना, भोजन-दानमें आदरबुद्धि रखते थे, आवश्यकादि पढ़ते थे और मुनि-श्रावकाचारके जानकार थे ।

घ—पं० रूपचन्द, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुमारपाल और धर्मदास नामके पाँच साथी उन्हें मिल गये और उनके संसर्गसे उन्हें अपने श्वेताम्बर धर्मपर अश्रद्धा हो गई । वे कहने लगे कि परस्परविरुद्ध होनेसे यह मत ठीक नहीं है, दिगम्बरमत ही सम्यक् है ।

ङ—वे लोगोंसे कहने लगे कि भाइयो, इस व्यवहार-जालमें फँस कर क्यों व्यर्थ ही अपनी विडम्बना कर रहे हो ? मोक्षके लिए तो केवल आत्मचिन्तन-रूप निश्चय सम्यक्त्व ही उपयोगी है, उसीका आचरण करो, सर्वधर्मसार उपशमका आश्रय लो और इन लोकप्रत्यायिका क्रियाओंको छोड़ दो ।

---

१ सत्य वचन जो सद्दहै, गहै साधुकौ संग ।
' वाचक जस ' कहै सो लहै, मंगल रंग अभंग ॥ १६१

२ ऋषभदेव-केसरीमल श्वेताम्बरसंस्था रतलामद्वारा प्रकाशित ।

च—अनेक आगम-युक्तियोंसे समझानेपर भी वे अपने पूर्वमतमें स्थिर नहीं हुए बल्कि श्वेताम्बरमान्य दस आश्चर्यादिको भी अपनी बुद्धिसे दूषित ठहराने लगे।

छ—प्रायः अध्यात्मशास्त्रोंके श्रवणसे उन्हें दिगम्बर मतमें विश्वास हो गया, वे उसीको प्रमाण मानने लगे, परन्तु चूँकि वे व्यवहारविरोधी थे, इसलिए दिगम्बर शास्त्रोंकी भी व्रतसमितिप्रतिपादक बातोंको उन्होंने प्रमाण नहीं माना। प्राचीन दिगम्बर अपने गुरु भट्टारकोंपर श्रद्धा रखते हैं परन्तु इनकी उनपर अश्रद्धा हो गई। परिग्रह होनेसे उनके मतसे मुनियोंको पिच्छिका कमंडलु न रखना चाहिए। आदिपुराण आदिको भी किंचित् ही प्रमाण मानना चाहिए।

ज—जिन प्रतिमाओंको आभरण और पुष्पमालायें पहिनाना तथा केसरसे चर्चित करना भी उन्होंने रोका।

झ—अपने मतकी वृद्धिके लिए उन्होंने भाषाकवितामें नाटक समयसार और बनारसीविलासकी रचना की।

ञ—उनके मतसे वनवासी, नग्न, अट्ठाईस मूल गुणोंके धारक मुनि ही सच्चे गुरु हैं, परन्तु इस समय वे हैं नहीं। दृश्यमान मुनि गुरु नहीं हो सकते।

ट—उनको श्रद्धान था कि स्त्रियोंको मुक्ति नहीं हो सकती, केवली आहार नहीं करते, अन्य लिंगसे मुक्ति संभव नहीं, आचारांग आदि ग्रन्थ प्रमाणभूत नहीं।

ठ—बनारसीदासके कालगत होनेपर कुँअरपालने उनके मतको धारण किया और तब वह गुरुके समान माना जाने लगा।

इस ग्रन्थका बहुत अधिक हिस्सा उन सब बातोंके खण्डनसे भरा हुआ है जो दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें एक-सी नहीं मिलतीं, जिन्हें श्वेताम्बर नहीं मानते और दिगम्बर मानते हैं। इसके लिए महोपाध्यायजीने सैकड़ों दिगम्बर-श्वेताम्बर ग्रन्थोंके प्रमाण उपस्थित किये हैं।

इस ग्रन्थमें भी रचना-काल नहीं दिया गया है; परन्तु जान पड़ता है यह यशोविजयजीके ग्रन्थोंसे भी बादकी रचना है। मेघविजयजीने आचार्य हेमचन्द्रके व्याकरणपर चन्द्रप्रभा नामकी टीका वि० सं० १७५७ में आगरेमें ही रहकर लिखी थी, अतएव लगभग उसी समय ही अध्यातमियोंका परिचय

पाकर उन्होंने युक्तिप्रबोध लिखा होगा। उन्होंने जब कि १७०१ में संग्रह किये हुए बनारसीविलासका उल्लेख किया है और बनारसीदासजीके देहान्तके बाद कुँअरपालके गुरु माने जानेकी बात लिखी है तब निश्चय ही यह ग्रन्थ १७५७ के आसपासका है।

ऐसा जान पड़ता है कि उस समय बनारसीदासजीका और उनके अध्यात्म मतका प्रभाव बढ़ गया था और उसमें अनेक प्रतिष्ठित श्वेताम्बर श्रावक शामिल हो रहे थे, इससे श्वेताम्बराचार्योंको अपने सम्प्रदायकी रक्षा करनेकी चिन्ता होना स्वाभाविक था और इसी लिए उन्होंने उक्त ग्रन्थोंकी रचना की।

इन ग्रन्थोंका जहाँ तक दिगम्बरमान्य सिद्धान्तोंके खण्डनसे सम्बन्ध है वहाँ तक तो ठीक है, इस तरहके और भी अनेक ग्रन्थ दिगम्बरोंके खण्डनमें लिखे गये हैं, सभी सम्प्रदाय अपने प्रतिपक्षी सम्प्रदायका खण्डन करते रहे हैं, परन्तु इनमें बानारसीमत या अध्यात्ममतका जो स्वरूप बतलाया गया है, वह गलत है। कमसे कम जिस समय ये ग्रन्थ लिखे गये हैं उस समय तो उक्त अध्यात्म मत एकान्त निश्चयावलम्बी नहीं था। उससे पहले वि० सं० १६८० से १६९२ तक अवश्य ही वैसा रहा होगा। तब क्या बनारसीदासजीकी उस समयकी विचित्र अवस्थाके विचार सुन सुनाकर ही अध्यात्ममतका यह खंडन किया गया है?

अर्धकथानकके अनुसार तो पं० रूपचन्दजीके उपदेशसे वि० सं० १६९२ में ही बनारसीदासजी ठीक मार्गपर आ गये थे और १६९३ में निश्चय-व्यवहारका समन्वय करनेवाले नाटकसमयसारकी रचना कर चुके थे।

अवश्य ही भगवत्कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्रका यह ग्रन्थ निश्चयको मुख्य और व्यवहारको गौण प्रतिपादित करता है और यही वस्तुका सच्चा स्वरूप है; परन्तु व्यवहारको सर्वथा हेय भी वह नहीं बतलाता। अध्यात्ममतके अनुयायी भी यही मानते होंगे। यदि व्यवहारकी इसी गौणताका ही उक्त ग्रन्थकारोंने खंडन किया है, तब तो यह कहना चाहिए कि उन्होंने बनारसीदासके मतका नहीं किन्तु कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्रके सिद्धान्तोंका खण्डन किया है।

हमारा विश्वास है कि श्वेताम्बर विद्वानोंकी तरह तत्कालीन दिगम्बर भट्टारकों या उनके शिष्योंने भी इस अध्यात्ममतके विरोधमें कुछ न कुछ

अवश्य लिखा होगा क्यों कि वे भी इससे सन्तुष्ट न थे। परन्तु अभी तक वह प्रकाशमें नहीं आया है। उसके प्रकाशित होनेपर संभव है कि हम इस मतकी कुछ और विशेषतायें जान सकें, जिनका केवल आभास ही युक्ति-प्रबोधसे मिलता है।

अभी तो हम इसी निश्चयपर पहुँचते हैं कि बनारसीदासजी एक स्वतंत्र विचारक और साहसी पुरुष थे, गतानुगतिकता उनमें नहीं थी और उनका मत दिगम्बरमान्य सिद्धान्तोंकी भूमिपर एक संशोधक या सुधारक मतके रूपमें खड़ा किया गया था। वह श्वेताम्बरसम्प्रदायको अप्रिय तो हुआ ही, कट्टर दिगम्बरोंको भी न रुचा, और आगे चलकर तो उसने दिगम्बर सम्प्रदायका काया-पलट ही कर दिया।

किंवदन्तियाँ

बनारसीविलासके प्रारम्भमें (सन् १९०५) मैंने कविवर बनारसीदासजीका जो जीवनचरित लिखा था उसके अन्तमें कुछ भक्तों और भावुकजनोंसे सुन-सुनाकर उनके सम्बन्धकी नीचे लिखीं सात किंवदन्तियाँ या जनश्रुतियाँ भी लिख दी थीं —

१ शाहजहाँके साथ शतरंज खेलना और उनके बुलानेपर एक दिन, मस्तक न झुकाना पड़े इस खयालसे, छोटे दरवाजेसे पैर आगे करके उनकी बैठकमें पहुँचना।

२ जहाँगीरको सलाम करनेके लिए कहनेपर ‘ ज्ञानी पातशाह ताको मेरी तसलीम है ’ आदि कवित्त पढ़कर सुनाना।

३ एक सिपाहीसे तमाचे खाकर भी उसकी सिफारिश करके बादशाहसे तनख्वाह बढ़वा देना।

४ बाबा शीतलदास नामक सन्यासीको बारबार नाम पूछकर चिढ़ाना और उन्हें ज्वालाप्रसाद कहना।

५ दो दिगम्बर मुनियोंको बारबार उँगली दिखाकर अशान्त करना और इस तरह उनकी परीक्षा करना।

६ गोस्वामी तुलसीदासका अपने शिष्योंके साथ आगरे आना कविवरसे मिलकर अपना रामचरितमानस (रामायण) भेट करना और इसके बाद बनारसीदासका ‘विराजै रामायण घटमाहिं’ आदि पद रचकर सुनाना।

७ देहावसानके समय कण्ठ अवरुद्ध हो जानेपर कविवरका ' चले बनारसीदास फेर नहिं आवना ' आदि लिखकर लोगोंके इस भ्रमको निवारण करना कि उनका मन मायामें अटक रहा है।

इस तरहकी अनेक किंवदन्तियाँ थोड़ेसे हेरफेरके साथ अन्य सन्त महात्माओंके सम्बन्धमें भी लिखीं और सुनी गई हैं; और चूँकि बनारसीदासजीने अपनी आत्मकथामें इनका कोई उल्लेख तो क्या संकेत भी नहीं किया है, उल्लेख न करनेका कोई कारण भी नहीं मालूम होता, इसलिए अब इनके सच होनेमें मुझे बहुत सन्देह हो गया है। पहले खयाल था कि आत्मकथा लिखनेके बाद वे बहुत समय तक जीवित रहे होंगे और इसलिए ये घटनायें उसके बाद घटित हुई होंगी। परन्तु अब तो यह करीब करीब निश्चय हो गया है कि वे उसके बाद दो वर्षके लगभग ही जिये हैं और इस थोड़ेसे समयमें इन सातों घटनाओंके मान लेनेमें संकोच होता है।

यदि गोस्वामी तुलसीदाससे साक्षात होनेकी बात सच होती तो उसका उल्लेख अर्धकथानकमें अवश्य होता। क्योंकि तुलसीदासका देहोत्सर्ग वि० सं० १६८० में हुआ था और अर्धकथानक १६९८ में लिखा गया है। इसी तरह जहाँगीरकी मृत्यु भी १६८४ में हो चुकी थी। ' ज्ञानी बादशाह 'वाला कवित्त नाटकसमयसार (चतुर्दश गुणस्थानाधिकार पद्य ११५) में है और वह १६९३ में पूर्ण हुआ था।

अभी कुछ ही समय पहले जयपुरके पुरोहित पं० हरिनारायण शर्मा बी० ए० ने सन्त सुन्दरदासजीकी तमाम रचनाओंका ' सुन्दरग्रन्थावली ' नामक बहुत ही सुसम्पादित संग्रह दो जिल्दोंमें प्रकाशित किया है और उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिकामें एक जगह लिखा है कि " प्रसिद्ध जैनकवि बनारसीदासजीके साथ सुन्दरदासजीकी मैत्री थी। सुन्दरदासजी जब आगरे गये तब बनारसीदासजीके साथ उनका संसर्ग हुआ था। बनारसीदासजी सुन्दरदासजीकी योग्यता, कविता और यौगिक चमत्कारोंसे मुग्ध हो गये थे। तब ही उतनी श्लाघा मुक्त कंठसे उन्होंने की थी। परन्तु वैसे ही त्यागी और मेधावी बनारसीदासजी भी तो थे। उनके गुणोंसे सुन्दरदासजी प्रभावित हो गये, तब ही वैसी अच्छी प्रशंसा उन्होंने भी की थी।......नाटकसमय-

सारमें जो 'कीच सौ कनक जाके' पद्य है, उसे बनारसीदासजीने सुन्दरदासजीको भेजा था और सुन्दरदासजीने उसके उत्तरमें दो छन्द भेजे थे 'धूल[2] जैसो धन जाके' और 'काम[3]हीन क्रोध जाके' तथा

१—कीचसौ कनक जाकै नीचसौ नरेसपद,
मीचसी मिताई गरुवाई जाकै गारसी।
जहरसी जोगजाति, कहरसी करामाति,
हहरसी हौंस पुदगलछबि छारसी॥
जालसो जगविलास भालसौ भवनवास,
कालसौ कुटंबकाज लोकलाज लारसी।
सीठसौ सुजस जानै बीठसौ बखत मानै,
ऐसी जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी॥ —बन्धद्वार १९

२ धूलि जैसौ धन जाकै सूलिसौ संसार सुख,
भूलि जैसौ भाग देखै अंतकीसी यारी है।
पास जैसी प्रभुताई साँप जैसौ सनमान,
बड़ाई हू बीछनीसी नागिनीसी नारी है॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक बिघ्न जैसौ बिधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धि सींटि डारी है।
बासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत ताहि बन्दना हमारी है॥ १५॥

३ कामहीन क्रोध जाकै लोभहीन मोह ताकै,
मदहीन मच्छर न कोउ न बिकारौ है।
दुखहीन सुख मानै पापहीन पुन्य जानै,
हरख न सोक आनै देहहीतैं न्यारौ है॥
निंदा न प्रसंसा करै रागहीन दोष धरै,
लैंनहीन दैंन जाकै कछु न पसारौ है।
सुन्दर कहत ताकी अगम अगाध गति,
ऐसौ कोऊ साध सु तौ रामजीकौ प्यारौ है॥ १६
—साधुको अंग पृ० ४९४

'प्रीतिसी न पाती कोऊ'। कोई कहते हैं पहले सुन्दरदासजीने पिछला छन्द भेजा था। कुछ हो इनका आपसमें प्रेम था और दोनोंकी काव्यरचनामें शब्द, वाक्य और विचारोंका साम्य स्पष्ट है। ये दोनों महात्मा आगरेमें कब मिले इसका पता नहीं है। हमको महन्त गंगारामजीसे तथा झुंझणूके श्रीमाल सेठ अमोलकचन्दजीसे यह कथा ज्ञात हुई थी।" इस किंवदन्तीमें जिन पद्योंको एक दूसरेके पास भेजनेके लिए कहा गया है, उन पद्योंसे तो ऐसी कोई बात ध्वनित नहीं होती, जिससे उसे सच माननेकी प्रवृत्ति हो सके। इस तरहके तो अनेक पद्य अनेक कवियोंकी रचनाओंमें मिलते हैं, परन्तु उनसे यह नहीं माना जा सकता कि रचयिताओंने उन्हें एक दूसरेके पास भेजनेके उद्देश्यसे लिखा था। ये तीनों चारों पद्य जिन ग्रन्थोंके हैं उनमें वे अपने अपने स्थानपर सर्वथा उपयुक्त और प्रकरणके अनुकूल हैं, वहाँसे वे हटाये नहीं जा सकते और इसलिए हमारी समझमें वे और किसी उद्देश्यसे नहीं लिखे गये।

सन्त सुन्दरदासजीका जन्म-काल वि० सं० १६५३ और मृत्यु-काल १७४६ है। इसलिए बनारसीदासजीसे उनकी मुलाकात होना संभव तो है परन्तु जब तक कोई और प्रमाण न मिले तब तक इसे एक किंवदन्तीसे अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता। अर्ध कथानकमें बनारसीदासजीने कहीं भी उस समयके किसी भी सन्तकी कोई चर्चा नहीं की है। सन्त समागमकी उनकी इच्छा भी कहीं व्यक्त नहीं होती।

---

१ प्रीतिसी न पाती कोऊ प्रेमसे न फूल और,
चित्तसौ न चंदन सनेहसौ न सेहरा।
हृदैसौ न आसन सहजसौ न सिंघासन;
भावसी न सौंज और सून्यसौ न गेहरा॥
सीलसौ सनान नाहिं ध्यानसौ न धूप और,
ज्ञानसौ न दीपक अज्ञान तमकेहरा।
मनसी न माला कोऊ सोहं सौ न जाप और,
आतमासौ देव नाहिं देहसौ न देहरा॥ १७

—सांख्यको अंग पृ० ५९६

ग्रन्थ-रचना

१ नवरस—कविवरकी यह सबसे पहली रचना थी, जिसे उन्होंने स्वयं अपने ही हाथसे गोमती नदीमें जल-समाधि दे दी थी। यह एक हजार दोहा-चौपाइयोंमें लिखी गई और नव-रसयुक्त थी, परन्तु इसमें इश्कबाजी ही अधिक थी। वे लिखते हैं—

पोथी एक बनाई नई, मित हजार दोहा चौपई ॥ १७८ ॥
तामैं नवरस रचना लिखी, पै बिसेस बरनन आसिखी।
ऐसे कुकवि बनारसी भए, मिथ्या ग्रंथ बनाये नए ॥ १७९ ॥

इसकी रचना वि० सं० १६५७ में जब कि वे केवल १४ वर्षके थे हुई थी और १६६२ में यह नष्ट कर दी गई।

२ नाममाला—बनारसीदासजीकी उपलब्ध रचनाओंमें यह सबसे पहली रचना है[1] जो आश्विन सुदी १० संवत् १६७० को जौनपुरमें समाप्त की गई थी। अपने परम मित्र नरोत्तमदास खोबरा और थानमल बदलियाके कहनेसे उनकी इसमें प्रवृत्ति हुई थी[2]। यह एक छोटा-सा शब्द-कोश है, जो १७५ दोहोंमें समाप्त हुआ है और बहुत ही सुगम है।[3] महाकवि धनंजयकी 'नाममाला' और 'अनेकार्थ नाममाला' के आधारसे परन्तु बिल्कुल स्वतंत्र रूपसे यह रचा गया है और कण्ठस्थ करने योग्य है।

---

१ जिस समय (सन् १९०५ ई०) मैंने बनारसीविलासका सम्पादन किया था और उसकी भूमिका लिखी थी, उस समय इस नाममालाकी प्रति प्राप्त न हुई थी। अब यह वीरसेवामंदिर द्वारा सरसावा प्रकाशित हो गई है।

२ मित्र नरोत्तम थान, परम विचच्छन धरम निधि (धन ?)।
तास बचनपरवान, कियौ निबंध विचार मन ॥ १७० ॥
सोरह सै सत्तरि समै, आसो मास सित पच्छ।
विजैदसमि ससिवार तह, स्रवन नखत परतच्छ ॥ १७६ ॥

३ अर्धकथानकमें लिखा है कि " करी नाममाला सै दोइ, राखे अजित छंद उर पोइ ॥ ३८७ ॥ " इससे मालूम होता है कि नाममालाकी पद्य-संख्या २०० थी परन्तु प्रकाशित नाममालामें १७५ ही दोहे हैं। जान पड़ता है कि कविने उक्त दो सौ की संख्या ३२ अक्षरोंका एक श्लोक मानकर दी है। प्रत्येक दोहेमें ३२ अक्षरोंसे कुछ अधिक ही अक्षर हैं।

३ नाटक समयसार—कविवर बनारसीदासजीकी यह सबसे प्रसिद्ध रचना है और दिगम्बर श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायोंमें इसका प्रचार है। आचार्य कुन्दकुन्दका समय प्राभृत, उसकी अमृतचन्द्राचार्यकृत आत्मख्याति नामक संस्कृत टीका और पं० राजमल्लकृत बालबोध भाषा टीका, इन तीनोंके आधारसे इस छन्दोबद्ध ग्रन्थकी रचना हुई है और इस दृष्टिसे यह कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है, फिर भी एक मौलिक ग्रन्थ जैसा मालूम होता है। कहीं भी क्लिष्टता, भावदीनता और परमुखापेक्षा नहीं दिखलाई देती। ऐसा मालूम होता है कि कविने मूल ग्रन्थके भावोंको बिल्कुल आत्मसात करके, अपने ही अनुभवोंके रूपमें प्रकट किया है। कवित्वकी दृष्टिसे भी यह रचना अपूर्व है। दोहा, सोरठा, चौपाई, छप्पय, अडिल्ल, कुंडलिया, सवैया, और कवित्त छन्दोंका इसमें उपयोग किया गया है। ग्रन्थसंख्या १७०७ है। आश्विन सुदी १३ सं० १६९३ में, शाहजहाँ बादशाहके समयमें, आगरेमें इसकी रचना समाप्त की गई थी[1]।

यह ग्रन्थ मूलमात्र कई बार प्रकाशित हो चुका है। बहुत पहले यह एक गुजराती टीकासहित भी प्रकाशित हुआ था। दो हिन्दीटीकायें भी इसकी छप चुकी हैं।

४ बनारसीविलास—बनारसीदासजीकी लगभग ५७ छोटी मोटी रचनाओंका यह संग्रह है। इसे पं० जगजीवनजीने चैत्र सुदी २ वि० १७०१ को संग्रह किया था और उन्हींने इसे यह नाम दिया था। वे बनारसीदासजीकी वाणीके बड़े भक्त थे, आगरेके ही रहनेवाले थे और शायद बनारसीदासजीके अवसानके बाद तत्काल ही उन्होंने यह संग्रह किया था। हमारा खयाल है कि इसमें कविवरकी प्रायः सभी रचनायें आगई होंगी, और यदि कुछ रह भी गई हों तो वे ऐसी होंगीं जिनका कुछ महत्त्व न होगा या जो लिखित रूपमें मिली न होंगीं। जिन रचनाओंका उल्लेख अर्धकथानकमें स्वयं कविवरने

---

१ सुखनिधान सकबंध नर, साहब साह किरान।
सहस-साह-सिर-मुकुटमनि, साहजहां सुलतान॥ ३७॥
जाके राज सुचैनसौं, कीनौं आगम-सार।
ईति-भीति ब्यापी नहीं, यह उनकौ उपगार॥ ३८॥

किया है, वे सभी इस संग्रहमें हैं, बल्कि उनके सिवाय भी कुछ और हैं— जैसे 'कर्मप्रकृतिविधान'। यह उनकी अन्तिम रचना है जो फाल्गुन सुदी सप्तमी, सं० १७०० को समाप्त हुई थी। बनारसीविलासका संग्रह चैत्र सुदी २ सं० १७०१ को किया गया था। अर्थात् कर्मप्रकृतिविधानके केवल २५ दिन बाद ही बनारसीविलास संग्रह हो गया था। बहुत संभव है कि इसीके बीच कविवरका देहान्त हो गया हो और उसके बाद ही उनके परम भक्त जगजीवनने उनकी स्मृति-रक्षाका यह आवश्यक कार्य किया हो। *

बनारसीविलासमें जो रचनायें संग्रह की गई हैं उनमेंसे ज्ञानबावनी (१६८६), जिनसहस्रनाम (१६९०), सूक्तमुक्तावली (१६९१) और कर्मप्रकृतिविधान (१६९१) ये चार ही रचनायें ऐसी हैं जिनमें उनकी रचना-तिथि दी हुई है शेषमें नहीं दी। परन्तु अर्द्धकथानकसे अधिकांश रचनाओंके सम्बन्धमें यह मालूम हो जाता है कि वे लगभग किस समय

---

* नगर आगरेमैं अगरवाल आगरौ,
गरगगोत आगरेमैं नागर नवलसा।
संगही प्रसिद्ध अभैराज राजमान नीके,
पंचबाला नलिनिमें भयौ है कँवलसा॥
ताके परसिद्ध लघु मोहनदे संघइनि,
जाके जिनमारग विराजत धवलसा।
ताहीकौ सुपूत जगजीवन सुदिढ़ जैन,
बानारसी बैन जाके हियमैं सबलसा॥ १
समै जोग पाइ जगजीवन बिख्यात भयौ,
ग्याननिकी मंडलीमैं जिसकौ विकास है।
तिननैं बिचार कीना नाटक बनारसीका,
आपके निहारिबेकौं आरसी प्रकास है॥
और काव्य घनी खरी करी है बनारसीनैं,
सो भी एक क्रमसेती कीजै ग्यान भास है।
ऐसी जानि एक ठौर कीनीं सब भाषा जोरि,
ताकौ नाम धरयौ यौ बनारसीबिलास है॥ २

बनी होंगी। कुछ रचनाओंके नाम तो उसमें समयसहित स्पष्ट रूपसे दिये हुए हैं जैसे अजितनाथके छन्द (३८६-८७), अष्टक (शारदाष्टक, अवस्थाष्टक, षट्दर्शनाष्टक ६२८), करमछतीसी (६२७), फुटकरकवित्त (प्र० फुटकर कविता ६२६), ज्ञानपचीसी (५९६), झूलना (परमार्थहिंडोलना ६२७), ध्यानबत्तीसी (५९६), पैड़ी (मोक्षपैड़ी ६२६), अध्यातमबत्तीसी (६२६), फाग धमाल (अध्योतम फाग ६२६), दो बचनिका (परमार्थ वचनिका और उपादान निमित्तकी चिट्ठी ६२८), सहस अठोतर नाम (जिनसहस्रनाम ६२७), सिन्धुचतुर्दशी (भवसिन्धु च० ६२६), सिवमन्दिर (कल्याणमन्दिर ५९७), सूक्तिमुक्तावली (६२५), शिवपच्चीसी (६२७), अन्तर रावन राम (अध्यात्मपदपंक्तिका १६ वाँ पद राग सारंग ६२७), दोइ बिध आँखें (अध्यात्म प. पं. के १८-१९ वें पद ६२८), और कुछ ऐसी भी हैं जिनके स्पष्ट नाम तो नहीं दिये हैं परन्तु संकेत मात्र दिये हैं जैसे—

१ तब फिर और कबीसुरी करी अध्यातममाहिं ॥ ४३६
२ कीनैं अध्यातमके गीत, बहुत कथन विवहार अतीत ।
सिवमंदिर इत्यादिक और, कवित अनेक किये तिस ठौर ॥५९७
३ अरु इस बीच कबीसुरी, कीनी बहुरि अनेक ॥ ६२५
४ ...' गीत ' बहुत किये कहौं कहौं लौं सोइ ॥ ६२८

इन संकेतोंमें हमारे खयालसे बनारसीविलासकी नीचे लिखी अन्य सभी रचनायें गिनी जानी चाहिए—

वेदनिर्णयपंचासिका, ५ त्रेसठ शलाका पुरुषोंकी नामावली, ६ मार्गणाविधान, ९ साधुवन्दना, १८ सोलह तिथि, १९ तेरह काठिया, २० अध्यात्मगीत, २१ पंचपदविधान, २२ सुमतिदेवीके नाम, २४ नवदुर्गाविधान, २५ नामनिर्णय, २६ नवरत्नकवित्त, २७ अष्टप्रकार जिनपूजा, २८ दशदानविधान, २९ दश बोल, ३० पहेली, ३१ प्रश्नोत्तर दोहा, ३२ प्रश्नोत्तरमाला, ३५ चातुर्वर्ण, ३७ शान्तिजिनस्तुति, ३८ नवसेनाविधान, ३९ पाठान्तर कलश, ४० मिथ्यामतवाणी, ४१ फुटकर कविता, ४२ गोरख वचन, ४३ वैद्य आदिके भेद, ४६ निमित्त उपादानके दोहे, ४७-४८ अध्यात्मपदपंक्ति ।

मोहविवेक जुद्ध—स्व० गुरुजी (पं० पन्नालालजी वाकलीवाल) ने

जब कि वे जयपुरमें वर्द्धमान ग्रन्थालयकी स्थापनाका उद्योग कर रहे थे और वहाँके ग्रन्थ-भंडारोंको देख रहे थे, किसी भंडारमेंसे मेरे पास इसकी अधूरी कापी करके भेजी थी। यह कापी अब भी मेरे संग्रहमें है जिसमें १२ दोहे और ६५ चौपइयाँ मिलकर ७७ पद्य हैं और ७८ वीं चौपई 'चार जुरे मन बाढ़यौ' इतने शब्द लिखकर छोड़ दी गई है। पूरी पुस्तक जयपुरके किसी भंडारमें होगी। इसका प्रारंभ इस प्रकार होता है—

दोहरा

बपुमैं बंरणि बणारसी, विवेक मोहकी सैन।
ताहि सुणत श्रोता सबै, मनमैं मानहि चैन ॥ १ ॥
पूरब भये सुकवि मल्ह, लालदास गोपाल।
मोह विवेक किये सु तिन्हि, बाणी वचन रसाल ॥ २ ॥
तिनि तीनिहु ग्रंथनि महा, सुलप सुलप सधि देखि।
सारभूत संक्षेप अब, सोधि लेत हौं सेष ॥ ३ ॥

चौपई

अनइच्छा इच्छा मन भयौ, निर्वृत्ति प्रवृत्तिके घरु गयौ।
निवर्ति जायो पुत्र विवेक, महा मोह मायाके एक ॥ ४ ॥
मन माया मोह वश कीनौं, तब दुहाग निवर्तिकौं दीनौ।
निवर्तिकै पीहर भरियाव, प्रवृतिको मनकेरे सहाव ॥ ५ ॥

यद्यपि इस कापीके प्रारंभमें 'कवि बनारसीदासकृत मोहविवेकजुद्ध,' लिखा है और आगे ५० वें पद्यमें भी बनारसीका स्पष्ट नाम लिखा है—

दोऊ दलके जुद्ध है, लरि मरि निबटे बीर।
बरनन करत बनारसी, अबहि क्रोधके तीर ॥ ५० ॥

परन्तु यह रचना कविवर बनारसीदासजीकी नहीं मालूम होती और न उनकी रचनाके साथ इसकी कोई तुलना ही हो सकती है। न तो इसकी भाषा ही ठीक है और न छन्द ही शुद्ध हैं। इसके कर्त्ता कोई दूसरे ही बनारसीदास मालूम होते हैं और वे कवि मल्ल, लालदास और गोपाल नामक कवियोंसे पीछे हुए हैं। गोपालदास व्रजवासी नामके एक कवि हो गये हैं, जिनकी दो रचनाओंका उल्लेख खोज रिपोर्ट (सन् १९०२) में किया गया है[1], एक

---

[1] देखो मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग पृ० ४३५ (द्वि० संस्करण)

'मोह विवेक' और दूसरा 'परिचय स्वामी दादूजी'। रागसागरोद्भवमें भी इनके पद मिलते हैं। पूर्वोक्त मोह-विवेककी रचना वि० सं० १७०० में हुई है। ये दादू पन्थके अनुयायी थे। इसी तरह सुकवि मल्ल और लालदासजी भी कोई जैनेतर सन्त जान पड़ते हैं। लालदास नामके एक कविने आगरेमें वि० सं० १७३४ में 'अवध विलास' नामका एक ग्रन्थ लिखा था[२] (खोज रिपोर्ट १९०१)। हो सकता है कि इनका भी कोई मोहविवेकजुद्ध हो। ऐसी दशामें इनकी रचनाओंके आधारसे मोहविवेकजुद्ध लिखनेवाले बनारसीदास निश्चय ही, सन्त-परम्पराके उनसे पीछेके, कोई दूसरे ही होंगे।

बनारसी पद्धति—स्व० बाबा दुलीचन्दजीद्वारा संग्रहीत ग्रन्थोंकी सूची (जैनशास्त्रनाममाला) में बनारसीपद्धति नामक एक और ग्रन्थका नाम दिया हुआ है जिसकी श्लोकसंख्या ५०० लिखी है। यह ग्रन्थ अर्धकथानक तो हो नहीं सकता। क्योंकि इसमें ६७५ दोहा चोपाई हैं जो ३२ अक्षरोंके एक श्लोककी गणनासे एक हजारके लगभग होगी। और बाबाजीने इसे भाषाछन्दोवद्ध विलासोंके कोष्टकमें लिखा है, इस लिए यदि इसे बनारसी-विलासका दूसरा नाम अनुमान किया जाय तो वह भी नहीं बन सकता। क्यों कि बनारसीविलासकी श्लोक संख्या पाँचसौसे कई गुनी है। तब या तो इसमें बाबाजीकी कोई भूल हुई है, या फिर बनारसीविलासके ही ५०० श्लोक-प्रमाण अंशको यह नाम दे दिया गया है।

पहले यह ख्याल था कि अर्ध कथानकमें कविवरने वि० सं० १६९८ तककी ५५ वर्षकी आत्म-कथा लिखी है। उसके बाद उन्होंने शायद शेष जीवनकी कथा भी लिखी हो और उसीका यह नाम हो, परन्तु अब यह लग-भग निश्चित है कि कविवरका शरीरान्त वि० सं० १७०० के ही लगभग हो गया था और इसलिए शेष जीवन-कथाके लिखे जानेकी संभावना नहीं है।

इधर पिछले तीस बरसोंसे हम उक्त नामके ग्रन्थकी बराबर खोज करते रहे हैं, परन्तु कहीं भी इसका पता नहीं लगा।

---

२ देखो, मिश्रबन्धु विनोद द्वितीय भाग पृ० ५०७ (द्वि० संस्करण)

अर्धकथानककी भाषा

[प्रो० **हीरालाल जैन**, एम० ए० एल० एल० बी०]

अर्धकथानकका जितना महत्त्व उसके साहित्यिक गुणों और ऐतिहासिक वृत्तान्तके कारण है उतना ही और संभवतः उससे भी अधिक उसकी भाषाके कारण है। सत्तरहवीं शताब्दि और उससे पूर्वके हिन्दी साहित्यका भाषा और व्याकरणकी दृष्टिसे अभीतक पूर्णतः वर्गीकरण नहीं किया जा सका है और इसलिए किसी एक नवीन ग्रन्थके विषयमें यह कहना कठिन है कि हिन्दीकी सुज्ञात उपभाषाओंमेंसे उस ग्रंथकी भाषा कौन-सी है।

बनारसीदासजीने अपने अर्धकथानककी भाषाको स्पष्ट रूपसे 'मध्य देशकी बोली' कहा है और प्राचीन संस्कृत साहित्यमें मध्यदेशकी चतुःसीमा इस प्रकार पाई जाती है—उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्याचल, पूर्वमें प्रयाग और पश्चिममें विनशन अर्थात् पंजाबके सरहिन्द जिलेका वह मरुस्थल जहाँ सरस्वती नदीका लोप हुआ है[1]। चीनी यात्री फाहियानने (स० ४५७) मताऊल (मथुरा) से दक्षिणके प्रदेशको मध्यदेश कहा है[2] और अलबेरूनीने (स० १०८७) कन्नौजके चारों ओरके प्रदेशको मध्य देश माना है[3]। बनारसीदासजीका क्रीडा-क्षेत्र प्रायः आगरासे जौनपुर तक यू० पी० का प्रदेश रहा है। अतएव इसे ही उनके द्वारा सूचित मध्यदेश माना जा सकता है।

अर्धकथानकके व्याकरणकी रूपरेखा इस प्रकार है—

वर्ण—इसमें देवनागरीके सभी स्वर पाये जाते हैं। विसर्गकी हिन्दीमें आवश्यकता ही नही पड़ती। 'ऋ' कहीं कहीं सुरक्षित पाया जाता है जैसे मृषा (३७), नौकृत (२३४) और कहीं कहीं उसकी जगह अन्य स्वरादेश पाया जाता है जैसे दिष्टि (१२९)।

व्यंजनोंमें 'श' के स्थानपर प्रायः सर्वत्र 'स' का आदेश पाया जाता

---

१ मनुस्मृति २, २१। २ फाहियान (दे. पु. मा. पृ. ३०) ३ अलबेरूनीका भारत, भा० १, पृ० १९८।

है, जैसे पास (पार्श्व), वंस (वंश), हुसियार (होशियार), कबीसुर (कवीश्वर), आवस्सिक (आवश्यक) (३४७), सुद्ध (शुद्ध) १७७। कहीं कहीं 'श' भी सुरक्षित है जैसे पश्चिम (११५)। किन्तु यह विचारणीय है कि यह कहाँ तक मूलका पाठ है और कहाँ तक लिपिकारकृत विकृति। 'ष' अनेक जगह पाया जाता है, जैसे मृषा (३७), पुरुष, दिष्टि (१२९), हरषित, विषाद (३५९), पृष्ठ (४८०), मेष (४८०) आदि। किन्तु कहीं कहीं उसके स्थानपर भी 'स' का आदेश देखा जाता है जैसे बरस (वर्ष), बिसेस (विशेष) १७९।

संस्कृतके संयुक्त वर्णोंको स्वरभक्ति या वर्णलोपके द्वारा सरल बनानेकी प्रवृत्ति देखी जाती है, जैसे—जनम (जन्म), पदारथ (पदार्थ), पास (पार्श्व), परिगह (परिग्रह) १२४, बितीत (व्यतीत)।

संज्ञाओंके कर्त्तावाचक और कर्मवाचक रूपके लिए, कोई विकृति या प्रत्यय नहीं पाया जाता जैसे—

ग्यानी जानै तिसकी कथा (६), बसै नगर रोहतगपुर (८), मूलदास भी कीन्हौ काल (२०), मुगल गयौ थो (२१), आयौ मुगल उतावलौ (२२), घनमल काल कियौ तिस ठौर (१८) आदि।

पर जहाँ सकर्मक क्रिया संस्कृतके भूतकालिक कृदन्त परसे बनी है वहाँ कर्त्ता कारकमें 'नै' भी पाया जाता है, जैसे खरगसैनकूं रायनै दिये परगने चारि (५५)।

करणकारकमें सौं या सूं प्रत्यय पाया जाता है। जैसे—सुखसौं बरस दोइ चलि गए (१८), एक पुत्रसौं सब कछु होइ (४३), लहना देना विधिसौं लिखै (४७), निज मातासूं मंत्र करि (५२) दुहूं मिलाय दामसूं भरी (६८)।

सम्प्रदान कारकमें कहीं 'सौं' और कहीं 'कौं' व 'कूं' प्रत्यय पाया जाता है। जैसे—मूलदाससौं बहुत कृपाल (१६), कहै मदन पुत्रीसौं रोइ (४३), पिता पुत्रकौं आई मीच (२०), खरगसैनकूं रायनै दिये परगने च्यारि (५५), तब चटसाल पढ़नकूं गयौ (४६)।

अपादान कारकमें 'सुं' 'सौं' प्रत्यय पाया जाता है। जैसे 'तबसुं' करै उद्दमकी दौर, तिस दिनसौं बानारसी नित्त सराहै मित्र (४८४)।

सम्बन्ध कारकमें बहुवचनमें 'के' स्त्रीलिंगमें 'की' और एकवचनमें

'का' 'कौ' प्रत्यय पाये जाते हैं। जैसे—बनारसीके, जिनदासके, जेठूके, वृत्तिके, पासकी, तीसिसैकी, उद्दमकी, रामकी, वस्त्रका काम, मुगलकौ, हुमाऊंकौ, साहुकौ पत्र (४९५) आदि।

अधिकरण कारकके प्रत्यय 'मैं' और 'माहिं' पाये जाते हैं। जैसे—मनमैं, जगतमैं, रोहतगमैं, जौनपुरमैं, गंगमाहिं, मनमाहिं, चीठीमाहिं आदि।

सर्वनामोंमें, तिन, (४१), ताकौ (४१), तिसकी (६), तिनके (१२), तिस (२१), जिन (३), जाकौ (१२), मैं (३८४), हम (४४२), मेरे (७), सो (३, ४३), यहु (१७, ३६), ए (३५), तू (४८३) तुमहि (४२) आदि रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

क्रियाके वर्तमानकालिक उत्तमपुरुषके रूप—

बंदौं (१), कहौं (५, ६, २१), भाखौं (७)।

वर्तमान अन्य पुरुषके रूप—बनारसी चिंतै मनमाहिं (४८०), बहुवचन—दोऊ साझी करहिं इलाज।

मध्यम पुरुषके रूप—तू जानहि (४८३)।

भूतकालिक अन्यपुरुषके रूप—कीनौ, भयौ, भए, (४८७), आयौ, बसायौ, कही, दिए, दीनै, पढ्यौ, खरचे, आदि।

सहायक क्रिया सहित—बखानी है, पानी है, जानी है, आदि।

भविष्यत्कालके रूप—होइगी (६), माँगहिगा (४८१), चलहिगा (४८१)।

आज्ञार्थक क्रियाके रूप—'उ' या 'हु' लगाकर बनाये गये हैं। जैसे 'कथा सुनु' (३८) सोच न करु (४४), सुनहु।

पूर्वकालिक अव्यय सर्वत्र क्रियामें 'इ' लगाकर बनाये गये हैं—सुनि, धरि, मानि, जानि, बखानि, बोलि, निकसि, पढ़ि, रोइ, गाइ, पहिराइ आदि।

अर्धकथानककी इन व्याकरणसंबंधी विशेषताओंको सन्मुख रखकर अब हम देखें कि उसकी भाषा व्रजभाषा कही जाय, या अवधी या कुछ और।

व्रजभाषाकी विशेषतायें ये हैं—

१ संज्ञा तथा विशेषणोंमें 'ओ' या 'औ' अन्तवाले रूप, जैसे बड़ो, छोटो, कारो, पीरो, घोड़ो।

२ संज्ञाका विकृतरूप बहुवचन 'न' प्रत्ययके रूपान्तर लगाकर बनाना, जैसे, राजन, घोड़न, हाथिन, असवारन आदि।

३ परसर्गोंमें कर्म—सम्प्रदानमें ‘ कौ ’ करण–अपादानमें ‘ सौं ’, ‘ तैं ’, और संबंधमें ‘ कौ ’, ‘ को ’।

४ सर्वनामोंमें उत्तम पुरुष मूलरूप एकवचन ‘ हौ ’ विकृतरूप ‘ यो, ’ सम्प्रदान कारकके वैकल्पिक रूप ‘ मोहिं ’ आदि, संबंधके ओकारान्त ‘ मेरो ’, ‘ हमरो ’ आदि ।

५ क्रियाके रूपोंमें ‘ है ’ लगाकर भविष्य निश्चयार्थ बनाना, जैसे, चलिहै; तथा सहायक क्रियाके भूत निश्चयार्थके हो, हतौ आदि रूप ।

इन लक्षणोंको जब हम अर्धकथानकमें ढूँढ़ते हैं तो विशेषणोंमें ‘ औ ’ अन्तवाले रूप कहीं कहीं दृष्टिगोचर हो जाते हैं—जैसे—

आयौ मुगल उतावलौ, सुनि मूलाकौ काल ।
मुहर छाप घर खालसै, कीनौ लीनौ माल ॥ २२ ॥

तथा कारक-रचनाकी विशेषतायें भी बहुत कुछ मिलती हैं ।

किन्तु शेष लक्षण नहीं मिलते, इससे अर्धकथानककी भाषाको पूर्णतः ब्रजभाषा नहीं कह सकते ।

अवधीके विशेष लक्षण निम्न प्रकार हैं—

१ संज्ञामें प्रायः तीन रूप, ह्रस्व, दीर्घ तथा तृतीय, जैसे घोड़, घोड़वा, घोड़उना ।

२ विकृतरूप बहुवचनका चिह्न ‘ न ’ ब्रजके समान जैसे ‘ घरन ’ किन्तु परसर्गोंमें कर्ममें ‘ का ’ संबंधमें ‘ केर ’ अधिकरणमें ‘ मा ’।

३ सर्वनामके सम्बन्ध कारकके रूप ‘ मोर, तोर ’, ‘ हमार ’, ‘ तुमार ’।

४ सहायक क्रियाके रूप अहौं, अही, अहे, अह्यो, अहै, अहीं, तथा बाट धातुके रूप बाट्पेउँ, बाटी, और रह धातुके रूप रहेउँ, रहे, आदि ।

५ क्रियार्थक संज्ञाओंके ‘ ब ’ अन्तक रूप जैसे देखब । भविष्यकालके बोधक अधिकांश रूप भी ‘ ब ’ लगाकर बनते हैं । जैसे—देखवूं आदि ।

इन लक्षणोंका तो अर्धकथानककी भाषामें प्रायः अभाव ही पाया जाता है । अतः उसको हम अवधी नहीं कह सकते ।

यदि हम विशेष बोलियोंकी विशेषताएँ इस ग्रंथकी भाषामें ढूँढ़ें तो हमें

---

१ देखो ब्रजभाषा व्याकरण, डा० धीरेन्द्र वर्माकृत, अलाहाबाद, १९३७, पृ० १५–१६ ।

उनका भी अभाव दृष्टिगोचर होता है। न यहां राजस्थानीकी मूर्द्धन्य ध्वनियोंका प्राधान्य है, 'न' के स्थानपर 'ण' भी नही है, न बुन्देलीका 'ड़' के स्थानपर 'र' और मध्य व्यंजन 'ह' का लोप पाया जाता है।

अर्ध कथानकमें उर्दू फारसीके शब्द काफी तादादमें आये हैं, और अनेक मुहावरे तो आधुनिक खड़ी बोलीके ही कहे जा सकते हैं। इसपरसे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि बनारसीदासजीने अर्ध कथानककी भाषामें व्रजभाषाकी भूमिका लेकर उसपर मुगल-कालमें बढ़ते हुए प्रभाववाली खड़ी बोलीकी पुट दी है, और इसे ही उन्होंने 'मध्यदेशकी बोली' कहा है जिससे ज्ञात होता है कि यह मिश्रित भाषा उस समय मध्यदेशमें काफी प्रचलित हो चुकी थी। इस प्रकार अर्ध कथानक भाषाकी दृष्टिसे खड़ी बोलीके आदिम कालका एक अच्छा उदाहरण है।

*

मुख्य मुख्य घटनाओंकी सूची

वि० सं०

१६०८—नरवरमें मूलदास बीहोलियाके खरगसेन (बनारसीदासके पिता) का जन्म ।

१६१३—मूलदासकी मृत्यु, उनकी जायदादकी ज़ब्ती, खरगसेनका अपनी माताके सहित जौनपुर जाना और अपने नाना मदनसिंह जौहरीके घर रहना ।

१६२२ (लगभग)—बंगालके सुल्तान सुलेमानके साले लोदीखानके दीवान धन्नारायके पास खरगसेनका जाना और उनकी कृपासे चार परगनोंका पोतदार बनना, परन्तु छह सात महीनेके बाद ही अचानक धन्नारायकी मृत्यु हो जानेसे फिर जौनपुर भाग आना ।

१६२६—आगरेमें सुन्दरदास पीतियाके साझेमें खरगसेनका सराफी करना ।

१६३०—मेरठके सूरदास ढोरकी लड़कीके साथ खरगसेनका ब्याह ।

१६३३—जौनपुर लौटकर मोती माणिक आदिका व्यापार करना ।

१६३५—खरगसेनके प्रथम पुत्रका जन्म और मरण ।

१६३७—रोहतककी सतीकी यात्राको खरगसेनका सस्त्रीक जाना और रास्तेमें चोरोंद्वारा लुटना ।

१६४१—मदनसिंह जौहरीकी मृत्यु ।

१६४३—माघ सुदी ११, शनिवार, रोहिणी नक्षत्रमें बनारसीदासका जन्म ।

१६४८—बनारसीदासजीको संग्रहिणी रोग ।

१६५०—शीतला (चेचक) का रोग ।

१६५१-५२—चटशालामें पढ़ने जाना और व्युत्पन्न होना ।

१६५३—अन्नका दुष्काल ।

१६५४—बनारसीदासका खैराबादके कल्याणमल तांबीकी लड़कीके साथ ब्याह ।

१६५५—जौनपुरके नवाब किलीचखाँके द्वारा वहाँके जौहरियोंपर घोर अत्याचार । उससे त्रस्त होकर खरगसेनका सपरिवार शाहजादपुर

वि० सं०

भागना और फिर इलाहाबाद जाकर व्यापार करना। बनारसीदासका फतेहपुर, इलाहाबाद और फिर फतेहपुरमें रहना।

१६५६—नवाब किलीचके आगरे चले जानेपर जौहरियोंका जौनपुर लौटना परन्तु इसके बाद ही वहाँ संग्रामकी तैयारी देखकर फिर भागना। खरगसेनका भी लछमनपुरा गाँवमें जाकर रहना और शान्ति हो जानेपर फिर जौनपुर लौटना।

१६५७—पंडित देवदत्तके पास बनारसीदासका विद्या पढ़ना और साथ ही इश्कबाजीमें पड़ना। श्री अभयधर्म उपाध्यायका जौनपुर आना और उनके शिष्य भानुचन्द्रके पास पंचसन्धि आदि पढ़ना।

१६५९—गौनेके लिए खैराबाद जाना, वहाँ एक महीने रहनेके बाद भयंकर रोगमें ग्रस्त होना और छह महीने दुख भोगकर जौनपुर लौटना।

१६६०—बनारसीदासके वीरबाई नामक लड़कीका जन्म और मरण। बड़ी बहिनका ब्याह। बीमारी। २० लंघनें करके अच्छे होना। एक सौदेमें खरगसेनको सौगुना मुनाफा होना।

१६६१—जहाँगीरके जौहरी हीरानन्द मुकीमद्वारा सम्मेदशिखरकी यात्राके लिए संघ निकाला जाना। उसके साथ खरगसेनका जाना। पिताकी अनुपस्थितिमें बनारसीदासका पार्श्वनाथकी यात्राके लिए बनारस जाना। इसके बाद एक पुत्रका जन्म और मरण।

१६६२—(कार्तिक)—बादशाह अकबरकी मृत्यु और जहाँगीरका तख्त-नशीन होना। बनारसीदासका अपनी नवरसकी पोथीको गोमतीमें जल-समाधि देना और इश्कबाज़ी छोड़कर धर्मकी राह पकड़ना।

१६६४—खरगसेनकी दूसरी लड़कीका ब्याह और बनारसीदासके एक और पुत्रका जन्म तथा उसकी मृत्यु।

१६६७—बनारसीदासका व्यापारके लिए आगरे जाना, वहाँ सर्वस्व खोकर बेकार पड़े रहना, उधार लेकर छह महीने तक कचौड़ियाँ खाकर दिन काटना और फिर धरमदासके साझेमें व्यापार करना।

१६७०—साझा तोड़कर खैराबाद जाना और अपनी पत्नीसे कुछ रुपया लेकर फिर आगरे आकर व्यापार करना। इसके बाद नरोत्तमदासके साथ प्रयाग जाना।

वि० सं०

१६७१—व्यापारके लिए बनारस जाना, और वहाँ व्रत ग्रहण करना। तीसरे पुत्रका जन्म और १५ दिन बाद पुत्रसहित पत्नीकी मृत्यु। पहली पत्नीकी बहिनके साथ सगाई। मित्र नरोत्तमके साथ कभी बनारस और कभी जौनपुरमें रहकर व्यापार। जौनपुरके नवाब किलीचखाँके बेटे चीनी किलीचखाँ द्वारा बनारसीदासको सिरोपाव दिया जाना। चीनी किलीचका बनारसीदाससे नाममाला, श्रुतबोध आदिका पढ़ना।

१६७२—चीनी किलीचकी मृत्यु। बनारसीदासका नरोत्तमके साथ पटने जाना और वहाँ ६–७ महीने व्यापार करना। आगानूर उमरावकी अवाई सुनकर जौनपुरमें फिर भगदड़ मचना। दोनों मित्रोंका अयोध्या और रौनाहीमें सात दिन तक और फिर उसके बाद जौनपुरके पास जंगलमें चालीस दिन तक छुपे रहना। आगानूरके अत्याचार।

१६७३—खरगसेनकी मृत्यु। आगरेमें पहली मरी (प्लेग) का फैलना। बनारसीदासका दूसरा ब्याह।

१६७५—अहिच्छत्र और हस्तिनापुरकी यात्रा।

१६७६—दूसरी पत्नीके गर्भसे पुत्रका जन्म।

१६७७—बनारसीदासकी माताकी मृत्यु।

१६७९—दूसरी पत्नी और पुत्रकी मृत्यु।

१६८०—तीसरा ब्याह। समयसारकी राजमल्ली टीकाका पढ़ना। ज्ञानपचीसी आदिकी रचना करना।

१६८४—तीसरी पत्नीके प्रथम पुत्रका जन्म और मरण। जहाँगीरकी मृत्यु और शाहजहाँका तख्तपर बैठना।

१६८५—तीसरी पत्नीसे दूसरे पुत्रका जन्म और मरण।

१६८७—तीसरे पुत्रका जन्म।

१६८९—पुत्रीका जन्म और मरण।

१६९२—पं० रूपचन्दका आगरेमें आना और उनसे गोम्मटसारका पढ़ना।

१६९३—नाटक समयसारकी रचना।

१६९८—तीसरे पुत्रकी मृत्यु। अर्धकथानककी रचना।

१७००—फाल्गुन सुदी सप्तमीको कर्मप्रकृतिविधानकी रचना।

शुद्धिपत्र

पद्यसंख्या	अशुद्ध	शुद्ध
७०	टेरि मेरठी	ढोर मेरठी
२००	बैठे हाट	बैठै हाट
,,	बड़ेकी सीख	बड़ेनिकी सीख
२०९	खमै उनसठे	समै उनसठे
२६१	खरगसेनघर (फिर)	खरगसेनके घर
२७५	राखी परवां न	राखी परवांन
३२५	दूलहलाइकै	हलहलाइकै
६२०	उनासिए पुत्री	नवासिए (?) पुत्री

अर्ध कथानक

दोहा

पानि-जुगल-पुट सीस धरि, मानि अपनपौ दास।
आनि भगति चित जानि प्रभु, बंदौं पास-सुपास॥ १

सवैया इकतीसा, बानारसी नगरीकी सिफथ

गंगमाहिं आइ धसी द्वै नदी बरुना असी,
बीचि बसी बानारसी नगरी बखानी है।
कसिवार देस मध्य गांउ तातैं कासी नांउ,
श्री सुपास पासकी जनमभूमि मानी है॥
तहां दुहू जिन सिवमारग प्रगट कीनौ,
तबसेती सिवपुरी जगतमैं जानी है।
ऐसी बिधि नाम थपे नगरी बनारसीके,
और भांति कहै सो तौ मिथ्यामत-बानी है॥

दोहा

जिन पहिरी जिन-जनमपुर-नाम-मुद्रिका-छाप।
सो बनारसी निज कथा, कहै आपसौं आप॥ ३

चौपाई

जैनधर्म श्रीमाल सुबंस। बानारसी नाम नरहंस।
तिन मनमाहिं बिचारी बात। कहौं आपनी कथा विख्यात॥ ४

जैसी सुनी बिलोकी नैन । तैसी कछु कहौं मुख बैन ॥
कहौं अतीत-दोष-गुणवाद । बरतमानताई मरजाद ॥ ५
भावी दसा होइगी जथा । ग्यानी जानै तिसकी कथा ॥
तातै भई-बात मन आनि । थूलरूप कछु कहौं बखानि ॥ ६
मध्यदेसकी बोली बोलि । गर्भित बात कहौं हिअ खोलि ॥
भाखौं पूरब-दसा-चरित्र । सुनहु कान धरि मेरे मित्र ॥ ७

दोहा

याही भरत सुखेतमैं, मध्यदेस सुभ ठांउ ।
बसै नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली-गांउ ॥ ८
गांउ बिहोलीमैं बसै, राजबंस रजपूत ।
ते गुरु-मुख जैनी भए, त्यागि करम अंघभूत[1] ॥ ९
पहिरी माला मंत्रकी, पायौ कुल श्रीमाल ।
थाप्यौ गोत बिहोलिआ, बीहोली-रखपाल ॥ १०
भई बहुत बंसावली, कहौं कहां लौं सोइ ।
प्रगटे पुर रोहतगमैं, गंगा[2] गोसल दोइ ॥ ११
तिनके कुल बस्ता भयौ, जाकौ जस परगास ।
बस्तपालके जेठमल, जेठूके जिनदास ॥ १२
मूलदास जिनदासके, भयौ पुत्र परधान ।
पढ़्यौ हिंदुगी पारसी, भागवान बलवान ॥ १३
मूलदास बीहोलिआ, वनिक बृत्तिके भेस ।
मोदी ह्वै करि मुगलकौ, आयौ मालवदेस ॥ १४

चौपई

मालवदेस परम सुखधाम । नरवर नाम नगर अभिराम ।
तहां मोगल पाई जागीर । साहि हिमाऊकौ बरबीर[3] ॥ १५
मूलदाससौं बहुत कृपाल । करै उचापति सौंपै माल ।
संबत सोलहसै जब जान । आठ बरस अधिके परवान ॥ १६

१ अ अधभूत, ब स अदभूत । २ ब स गोसल गांगौ । ३ अ प्रतिके हासियेपर इस शब्दका अर्थ 'उमराव' दिया है ।

सावन सित पंचमि रबिबार । मूलदास-घर सुत अवतार ।
भयौ हरख खरचे बहु दाम । खरगसेन दीनौ यहु नाम ॥ १७
सुखसौं बरस दोइ चलि गए । घनमल नाम और सुत भए ।
बरस तीन जब बीते और । घनमल काल कियौ तिस ठौर ॥ १८

दोहा

घनमल घन-दल उड़ि गए, काल-पवन-संजोग ।
मात-तात-तरुवर तए, लहि आतप सुत-सोग ॥ १९

चौपई

लघु सुत सोक कियौ असराल । मूलदास भी कीन्हौ काल ॥
तेरहोत्तरे संबत बीच । पिता-पुत्रकौं आई मीच ॥ २०
खरगसेन सुत माता साथ । सोक-विआकुल भए अनाथ ॥
मुगल गयौ थो[१] काहू गांउ । यह सब बात सुनी तिस ठांउ ॥ २१

दोहा

आयौ मुगल उतावलौ, सुनि मूलाकौ काल ।
मुहर-छाप घर खालसै, कीनौ लीनौ माल ॥ २२
माता पुत्र भए दुखी, कीनौ बहुत कलेस ।
ज्यौं त्यौं करि दुख देखते, आए पूरब देस ॥ २३

चौपई

पूरबदेस जौनपुर गांउ । बसै गोमती-तीर सुठांउ ।
तहां गोमती इहि बिधि बहै । ज्यौं देखी त्यौं कविजन कहै ॥ २४

दोहा

प्रथम हि[३]दक्खनमुख बही, पूरब मुख परबाह ।
[४]बहुरौं उत्तरमुख बही, गोवै नदी अथाह ॥ २५

---

१ ब पाछैं । २ ब स हो । ३ अ दक्षिन । ४ ब फिरकर ।

चौपई

गोवेइ नदी त्रिविधमुख बही। तट रवनीके सुविस्तर मही।
कुल पठान जौनासह नांउ। तिन तहां आय बसायौ गांउ॥ २६
कुतबा पढ़्यौ छत्र सिर तान। बैठि तखत फेरी निज आन।
तब तिनि तखत जौनपुर नांउ। दीनौ भयौ अचल सो गांउ॥ २७
चारौं बरन बसैं तिस बीच। बसहि छतीस पौंन कुल नीच॥
बांभन छत्री बैस अपार। सूद्र भेद छत्तीस प्रकार॥ २८

सवैया इकतीसा

सीसगर, दरजी, तंबोली, रंगवाल, ग्वाल,
बाढ़ई, संगतरास, तेली, धोबी, धुनिआ।
कंदोई, कहार, काछी, कलाल, कुलाल, माली,
कुंदीगर, कागदी, किसान, पटबुनिआ॥
चितेरा, बिधेरा, बारी, लखेरा, ठठेरा, राज,
पटुवा छैप्परबंध नाई भार-भुनिया।
सिकलीगर, हवाईगर, सुनार, लुहार,
धीमर, चमार एई छत्तीस पउनिया॥ २९

चौपई

नगर जौनपुर भूमि सुचंग। मठ मंडप प्रासाद उतंग।
सोभित सपतखने गृह घने। सघन पताका तंबू तने॥ ३०
जहां बावन सराइ पुरकने। आसपास बावन परगने।
नगरमांहिं बावन बाजार। अरु बावन मंडई उदार॥ ३१
अनुक्रम भए तहां नव साहि। तिनके नांउ कहौं निरबाहि।
प्रथम साह जौनासह जानि। दुतिय बबेक्करसाहि बखानि॥ ३२
त्रितिय भयौ सुरहर सुलतान। चौथो दोस महम्मद जान॥
पंचम भूपति साहि निजाम। छट्ठम साहि बिराहिम नाम॥ ३३

---

१ ब वै। २ ब रमनीक। ३ स छपरबंद। ४ स धीवर। ५ स वब्रधर। ६ स सुरदुर।

सत्तम साहिब साहि हुसैन। अट्ठम गाजी सेज्जित सैन॥
नवम साहि बख्या सुलतान। बरती जासु अखंडित आन॥ ३४
ए नव साहि भए तिस ठांउ। यातैं तखत जौनपुर नांउ॥
पूरब दिसि पटनालौं आन। पंच्छिम हद्द इटावा थान॥ ३५
दंक्खन बिंध्याचल सरहद्द। उत्तर परमित घाघर नद्द॥
इतनी भूमि रांज विख्यात। बरिस तीनिसैकी यहु बात॥ ३६
हुते पुब्ब पुरखा परधान। तिनके बचन सुने हम कान॥
बरनी कथा जथाश्रुत जेम। मृषा-दोष नहिं लागै एम॥ ३७

दोहा

यह सब बरनन पाछिलो, भयौ सुकाल बितीत।
सोरहसै तेरै अधिक, समै कथा सुनु मीत॥ ३८
नगर जौनपुरमैं बसै, मदनसिंघ श्रीमाल।
जैनी गोत चिनालिया, बनजै हीरा-लाल॥ ३९
मदन जौंहरीकौ सदन, ढूंढ़त बूझत लोग।
खरगसेन मातासहित, आए करम-संजोग॥ ४०
बंजमल नाना सेनकौ, ताकौ भाँई एह।
दीनौ आदर अधिक तिन, कीनौ अधिक सनेह॥ ४१

चौपई

मदन कहै पुत्री सुनुं एम। तुमहिं अवस्था व्यापी केम॥
कहै सुता पूरब बिरतंत। एहि बिधि मुए पुत्र अर कंत॥ ४२
सरबस लूटि लियौ ज्यौं मीर। सो सब बात कही धरि धीर॥
कहै मदन पुत्रीसौं रोइ। एक पुत्रसौं सब कछु होइ॥ ४३
पुत्री सोच न करु मनमाहिं। सुख-दुख दोऊ फिरती छाहिं॥
सुता दोहिता कंठ लगाइ। लिए बस्त्र भूखन पहिराइ॥ ४४
सुखसौं रहैं न व्यापै काल। जैसा घर तैसी ननसाल॥
बरिस तीनि बीते इह भांति। दिन दिन प्रीति रीति सुख सांति॥४५

---

१ स साजत। २ अ पश्चिम। ३ अ दच्छिन। ४ स राजु। ५ स छज-मल। ६ अ प्रतिके हासियेमें इस शब्दका अर्थ 'खरगसेन' लिखा है। ७ ब अग्रह (ज?)। ८ ब सौं।

आठ बरसकौ बालक भयौ । तब चटसाल पढ़नकूं गयौ ॥
पढ़ि चटसाल भयौ ब्युतपन्न[1] । परखै रजत टका सोवन्न ॥ ४६
गेह उचापति लिखै बनाइ । अत्तो जमा कहै समुझाइ ॥
लहना देना बिधिसौं लिखै । बैठे हाट सराफी सिखै ॥ ४७
बरिस च्यारि जब बीते और । तबसुं करै उद्दमकी[2] दौर ॥
पूरब दिसि बंगाला थान । सुलेमान सुलतान पठान ॥ ४८
ताकौ साला लोदी खान । सो तिन राख्यौ पुत्र समान ॥
सिरीमाल ताकौ दीवान । नांउ राय धंना जग जान ॥ ४९
सींधर[3] गोत्र बंगाले बसै । सेवैं सिरीमाल पांचसै[4] ॥
पोतदार कीए तिन सर्व । भाग्य-संजोग[5] कमावहिं दर्व ॥ ५०
करै[6] बिसास न लेखा लेइ । सबकौं[7] फारकती लिखि देइ ॥
पोसह-पड़िकमणासूं प्रेम । नोतन गेह करनकौ नेम ॥ ५१

दोहा

खरगसेन बीहोलिआ, सुनी रायकी बात ।
निज मातासूं मंत्र करि, चले निकसि परभात ॥ ५२
माता किछु खरची दई, नाना जानैं नाहिं ।
लै घोरा असवार होइ, गए रायजी पाहिं ॥ ५३
जाइ रायजीकौं मिल्यौ, कह्यौ सकल बिरतंत ।
करी दिलासा बहुत तिन, धरी बात उर अंत ॥ ५४
एक दिवस काहू समै, मनमैं सोचि बिचारि ।
खरगसेनकूं रायनैं, दिए परगने च्यारि ॥ ५५

चौपई

पोतदार कीनौं निज सोइ, दीनैं साथि कारकुन दोइ ।
जाइ परगने कीनौं काम, करहि अमल तहसीलहि दाम ॥ ५६
जोरि खजाना भेजहि तहां, राय तथा लोदीखां जहां ॥
इहि बिधि बीते मास छ सात, चले समेतसिखरिकी जात ॥५७

---

१ ब बितपन्न । २ अ उदम, ब उद्दिम । ३ ब सिंधड़, स सीधड़ । ४ अ पंचसै । ५ स भाग्यपयोग । ६ ब कर बिस्वास । ७ अ सबसूं ।

दोहा

संघ चलायौ रायजी, दियौ हुकम सुलतान।
उहां जाइ पूजा करी, फिरि आए निज थान॥ ५८
आइ राइ पट-भौनमैं, बैठे संध्या काल।
बिधिसौं सामाइक करी, लीनौ कर जपमाल॥ ५९
चौ बिहार करि मौन धरि, जपै पंच नवकार।
उपजी सूल उदरविषै, हूंआ हाहाकार॥ ६०
कही न मुखसौं बात किछु, लही मृत्यु ततकाल।
गही और थिति जाइ तिनि, ढही देह-दीवाल॥ ६१

सवैया इकतीसा

पुन्य संजोग जुरे रथ पाइक, माते मतंग तुरंग तबेले।
मानि बिभौ अगयौ सिर भार, कियौ बिसतार परिग्रह ले ले॥
बंध बढ़ाइ करी थिति पूरन, अंत चले उठि आप अकेले।
हारि हमालकी पोटसी डारि कै, और दिवालकी ओट ह्वै खेले॥ ६२

चौपाई

एहि बिधि राय अचानक मुआ। गांउ गांउ कोलाहल हुआ॥
खरगसेन सुनि यह बिरतंत। गयौ भागि घर त्यागि तुरंत॥ ६३
कीनौ दुखी दरिद्री भेख। लीनौ ऊबट पंथ अदेख॥
नदी गांउ बन परवत घूमि। आए नगर जौनपुर-भूमि॥ ६४
रजनी समै गेह निज आइ। गुरुजन-चरन नमैं सिर नाइ॥
किछु अंतर धन हुतौ जु साथ। सो दीनौ माताके हाथ॥ ६५
इहि बिधि बरस चारि चल गए। बरस अठारहके जब भए।
कियौ गवन तब पच्छिम दीस। संवत सोलह सै छब्बीस॥ ६६
आए नगर आगरेमाहिं। सुंदरदास पीतिआ पाहिं।
खरगसेनसौं राखै प्रेम। करै सराफी बेचै हेम॥ ६७
खरगसेन भी थैली करी। दुहूं मिलाय दामसूं भरी।
दोऊ सीर करैं बेपार। कला निपुन धनवंत उदार॥ ६८

---

१ अ वहाँ। २ ब हूवा।

उभय परस्पर प्रीति गहंत[1] । पिता पुत्र सब लोग कहंत ।
बरस च्यारि ऐसी बिधि भए । तब मेरठिपुर ब्याहन गए ॥ ६९

छप्पै

सूरदास श्रीमाल, टेरि (?) मेरठी[2] कहावै ।
ताकी सुता बियाहि, सेन अर्गलपुर आवै ॥
आइ हाट बैठे कमाइ, कीनी निजै[3] संपति ।
चाचीसौं नहिं बनी, लियौ न्यारो घर दंपति ॥
इस बीचि बरस द्वै तीनिमहिं, सुंदरदास कलत्रजुत ।
मरि गए त्यागि धन धाम सुखै[4], सुता एक, नहिं कोउ सुत ॥ ७०

दोहा

सुता कुमारी जो हुती, सो परनाई सेनि ।
दान मान बहुबिधि दियौ, दीनी कंचन [5]रैनि ॥ ७१
संपति सुंदरदासकी, जु कछु लिखी मिलि पंच ।
सो सब दीनी बहिनकौं, सेन न राखी रंच ॥ ७२
तेतीसै संवत समै, गए जौनपुर गाम ।
एक तुरंगम एक रथ, बहु पायक बहु दाम ॥ ७३
दिन दस बीते जौनपुर, नगरमांहि करि हाट ।
साझी करि बैठे तुरित, कियौ बनिजकौ ठाट ॥ ७४

चौपई

रामदास बनिआ धनपती । जाति अगरवाला सिवमती ॥
सो साझी कीनौ हित मान[6] । प्रीति रीति परतीति मिलान ॥ ७५
करहिं सराफी दोऊ गुनी । बिनजहिं[7] मोती मानिक चुनी ॥
सुखसौं काल भली बिधि गमै । सोलहसै पैतीसै समै ॥ ७६
खरगसेन सुत घर अवतर्‍यौ । खर्‍चयौ दर्ब हर्ष मन धर्‍यौ ॥
दिन दसमैं पहुच्यौ परलोक । कीनौ प्रथम पुत्रकौ शोक ॥ ७७

---

१ ब करंत । २ अ ठोर सोरठी, ब टेरि मरहठी । ३ स बहु । ४ ब सब ।
५ ब देन । ६ ब जान । ७ ब बनजहिं ।

सैतीसै संवतकी बात । रुहतग गए सतीकी जात ॥
चोरन्ह लूटि लियौ पथमाहिं । सर्वस गयौ रह्यौ कछु नाहिं ॥ ७८
रहे वस्त्र अरु दंपति-देह । ज्यौं त्यौं करि आए निज गेह ॥
गए हुते मांगनकौं पूत । यहु फल दीनौ सती अऊत ॥ ७९
तऊ न समुझे मिथ्या बात । फिरि मानी उनहीकी जात ॥
प्रगट रूप देखैं सब सोग । तऊ न समुझैं मूरख लोग ॥ ८०
घर आए फिर बैठे हाट । मदनसिंघ चित भए उचाट ॥
माया तजी भई सुख सांति । तीन बरस बीते इस भांति ॥ ८१
संबत सोलहसै इकताल । मदनसिंघनैं कीधो काल ॥
धर्म कथा फैली सब ठौर । बरस दोइ जब बीते और ॥ ८२
तब सुधि करी सतीकी बात । खरगसेन फिर दीनी जात ॥
संबत सोलहसै तेताल । माघ मास सित पक्ष रसाल ॥ ८३
एकादसी[1] बार रवि नंद । नखत रोहिनी वृपकौ चंद ॥
रोहिनि त्रितिय चरन अनुसार । खरगसेन घर सुत अवतार ॥८४
दीनौ नाम विक्रमाजीत । गावहिं कामिनि मंगल गीत ॥
दीजहि दान भयौ अति हर्ष । जनम्यौ पुत्र आठएं वर्ष ॥ ८५
एहि बिधि बीते मास छ सात । चले सु पार्श्वनाथकी जात ॥
कुल कुटुंब सब लीनौ साथ । बिधिसौं पूजे पारसनाथ ॥ ८६
पूजा करि जोरे निज[2] पानि । आगै बालक राख्यौ आनि ॥
तब कर जोरि पुजारा[3] कहै । "बालक चरन तुम्हारे गहै ॥ ८७
चिरंजीवि कीजै यह बाल । तुम्ह सरनागतके रखपाल ॥
इस बालकपर कीजै दया । अब यहु दास तुम्हारा भया" ॥८८
तब सु पुजारा साधै पौन । मिथ्या ध्यान कपटकी मौन ॥
घटी एक जब भई बितीत । सीस घुमाइ कहै सुनु मीत ॥ ८९
"सुपिनंतर[4] किछु आयौ मोहि । सो सब बात कहौं मैं तोहि ॥
प्रभु पारस जिनवरकौ जच्छ । सो मोपै आयौ परतच्छ ॥ ९० ॥

१ ब एकादशि रविवार सुनंद । २ ब जुग । ३ ब पुजेरा । ४ ब सुपनंतर ।

तिन यहु बात कही मुझपाहिं । इस बालककों चिंता नाहिं ॥
जो प्रभु पास-जनमकौ गांउ । सो दीजै बालककौ नांउ ॥ ९१
तौ बालक चिरजीवी होइ । यहु कहि लोप भयौ सुर सोइ ॥ ''
जव यह बात पुजेरा कही । खरगसेन जिय मोनी[1] सही ॥ ९२

दोहा

हरषित कहै कुटंब सब, स्वामी पास सुपास ।
दुहुंकौ जनम बनारसी, यहु बनारसी-दास ॥ ९३

चौपई

इहि विधि बालककौ धरि नांउ । आए पलटि जौनपुर गांउ ॥
सुख समाधिसौं बरतै बाल । संबत सोलह सै अठताल ॥ ९४
पूरब करम उदै संजोग । बालककौं संग्रहिनी रोग ।
उपज्यौ[2] ओषध कीनी घनी । तऊ न बिथा जाइ सिसुतनी ॥ ९५
बरस एक दुख देख्यौ बाल । सहज समाधि लैई[3] ततकाल ॥
बहुरौ बरस एकलौं भला । पंचासै निकसी सीतला ॥ ९६

दोहा

बिथा सीतला उपसमी, बालक भयौ अरोग ।
खरगसेनके घर सुता, भई करम-संजोग ॥ ९७

चौपई

आठ बरसकौ हूओ बाल । विद्या पठन गयौ चटसाल ॥
गुरु पांडेसौं विद्या सिखै । अक्खर बांचै लेखा लिखै ॥ ९८
बरस एक लौं विद्या पढ़ी । दिन दिन अधिक अधिक मति बढ़ी ॥
विद्या पढ़ी हुओ बिनपन्न । संबत सोलह सै बावन्न ॥ ९९

दोहा

खरगसेन बनिजै रतन, हीरा मानिक लाल ।
इस अंतर नौ बरसकौ, भयौ बनारसि बाल ॥ १००

---

१ ब जानी । २ अ उपजी । ३ ब भई ।

खैराबाद नगर बसै, तांबी परबत नाम।
तासु पुत्र कल्यानमल, एक सुता तस[1] धाम ॥ १०१
तासु पुरोहित आइऔ, लीनै नाऊँ[2] साथ।
पत्र लिखित कल्यानकौ, दियौ सेनके हाथ ॥ १०२
करी सगाई पुत्रकी, कीनौ तिलक लिलाट।
बरस दोइ उपरांत लिखि, लगन ब्याहकौ ठाट ॥ १०३
भई सगाई बावनें, पर्‌यौ त्रेपनें काल।
महघा अंन न पाइयै, भयौ जगत बेहाल ॥ १०४

चौपई

गयौ काल बीते दिन घने। संबत सोलह सै चौवने ॥
माघ मास सित पख बारसी। चले बियाहन बानारसी ॥१०५
करि बिवाह आए निज धाम। दूजी और सुता अभिराम ॥
खरगसेनके घर अवतरी। तिस दिन वृद्धा नानी मरी ॥ १०६

दोहा

नानी मरन सुता जनम, पुत्रबधू आगौन।
तीनौ कारज एक दिन, भए एक ही भौन ॥ १०७
यह संसार बिडम्बना, देखि प्रगट दुख खेद।
चतुर चित्त त्यागी भए, मूढ़ न जानहि भेद ॥ १०८

चौपई

इहि बिधि दोइ मास बीतिआ। आयौ दुलिहिनकौ पीतिआ ॥
ताराचंद नाम श्रीमाल। सो लेइ चल्यौ भतीजी नाल ॥ १०९
खैराबाद नगर सो गयौ। इहां जौनपुर बीतिक[3] भयो ॥
बिपदा उदै भई इस बीच। पुरहाकिम नौवाब किलीच[4] ॥ ११०

दोहा

तिन पकरे सब जौहरी, दिए कोठरीमाहिं ॥
बड़ी बस्तु माँगै कछू, सो तो इनपै नाहिं ॥ १११

---

१ ब तसु। २ स नापित। ३ ब बीतक। ४ ब कलीच।

एक दिवस तिनि कोप करि, कियौ हुकम उठि भोर।
बांधि बांधि सब जौंहरी, खड़े किए ज्यौं चोर॥ ११२
हनें कटीले कोरडे, कीनें मृतक समान।
दिए छोड़ तिस बार तिनि, आए निज निज थान॥ ११३
आइ सबनि कीनौ मतौ, भागि जाहु तजि भौन।
निज निज परिगह साथ ले, परै काल-मुख कौन॥ ११४

चौपई

यह कहि भिन्न भिन्न सब भए। फूटि फाटिकें चहुदिसि गए॥
खरगसेन लै निज परिवार। आए पश्चिम गंगापार॥ ११५
नगरी साहिजादपुर नांउ। निकट कड़ा[1] मानिकपुर गांउ॥
आए साहिजादपुर बीच। बरसै मेघ भई अति कीच॥ ११६
निसा अँधेरी बरसा घनी। आइ सराइ बसे गृह-धनी॥
खरगसेन सब परिजन साथ। करहि रुदन ज्यौं दीन अनाथ॥११७

दोहा

पुत्र कलत्र सुता जुगल, अरु संपदा अनूप।
भोगअंतराई उदै, भए सकल दुखरूप॥ ११८

चौपई

ईनि[2] अवसर तिनि पुर थानिया। करमचंद माहुर[3] बानिया॥
तिनि अपनौं घर खाली कियौ। आपु निवास और घर लियौ॥११९
भई बितीतैं[4] रैनि इक जाम। टेरै खरगसेनकौ नाम॥
टेरत बूझत आयौ तहां। खरगसेनजी बैठे जहां॥ १२०
'रामराम' करि बैठ्यौ पास। बोल्यौ तुम साहब मैं दास॥
चलहु कृपा करि मेरे संग। मैं सेवक तुम चढ़ौ तुरंग॥ १२१
जथाजोग है डेरा एक। चलिए तहां न कीजै टेक॥
आए हितसौं तासु निकेत। खरगसेन परिवारसमेत॥ १२२
बैठे सुखसौं करि विश्राम। देख्यौ अति विचित्र सो धाम॥
कोरे कलस धरे बहु माट। चादरि सोरि तुलाई खाट॥ १२३

---

१ अ करी मानिकपुर। २ ब इस। ३ ब माहर। ४ ब बितीति।

भरयौ अंनसौं कोठा एक । भव्य पदारथ अवर अनेक ॥
सकल बस्तु पूरन करि गेह । तिनि दीनौं करि बहुत सनेह ॥१२४
खरगसेन हठ कीनौ महा । चरन पकरि तिन कीनी हहा ॥
अति आग्रह करि दीनौ सर्व । विनय बहुत कीनी तजि गर्व ॥१२५

दोहा

घन बरसै पावस समै, जिन दीनौ निज भौन ।
ताकी महिमाकी कथा, मुखसौं बरनै कौन ॥ १२६

चौपई

खरगसेन तहां सुखसौं रहै । दसा बिचार कबीसुर कहै ॥
वह दुख दियौ नवाब किलीच । यहु सुख साहिजादपुरबीच ॥ १२७
एक दिष्टि बहु अंतर होइ । एक दिष्टि सुखदुख सम दोइ ॥
जो दुख देखै सो सुख लहै । सुख भुंजै सोई दुख सहै ॥ १२८

दोहा

सुखमैं मानै मैं सुखी, दुखमैं दुखमय होइ ।
मूढ़ पुरुषकी दिष्टिमैं, दीसैं सुख दुख दोइ ॥ १२९
ग्यानी संपति विपतिमैं, रहै एकसी भांति ।
ज्यौं रबि ऊगत आथवत, तजै न राती कांति ॥ १३०
करमचंद माहुर बनिक, खरगसेन श्रीमाल ।
भए मित्र दोऊ पुरुष, रहैं रयनि दिन लाल[3] ॥ १३१
इहि बिधि कीनौ मास दस, साहिजादपुर बास ।
फिर उठि चले प्रयागपुर, बसै त्रिबेनी पास ॥ १३२

चौपई

बसै प्रयाग त्रिबेनी पास । जाकौ नांउ इलाहाबास ॥
तहां दानि वसुधा-पुरहूत । अकबर पातिसाहकौ पूत ॥ १३३
खरगसेन तहां कीनौ गौन । रोजगार कारन तजि भौन ॥
बानारसी बाल घर रह्यौ । कौड़ी बेच बनिज तिन गह्यौ ॥ १३४

---

१ ब ठौ । २ ब और । ३ ब नाल ।

एक टका द्वै टका कमाइ । काहूकी ना धरै तमाइ ॥
जोरै नफा एकठा करै । लै दादीके आगैं धरै ॥ १३५

दोहा

दादी बांटै सीरनी, लाडू निकुंती[1] नित्त ।
प्रथम कमाई पुत्रकी, सती अऊत निमित्त ॥ १३६

चौपई

दादी मानै सती अऊत । जानै तिनि दीनौ यह पूत ॥
देखै सुपन करै जब सैन । जागे कहै पितरके बैन ॥ १३७
तासु बिचार करै दिन राति । ऐसी मूढ़ जीवकी जाति ॥
कहत न बनै कहै का कोइ । जैसी मति तैसी गति होइ ॥ १३८

दोहा

मास तीनि औरो गए, बीते तेरह मास ।
चीठी आई सेनकी, करहु फतेपुर बास ॥ १३९
डोली द्वै[2] भाड़े करी, कीनै च्यारि मजूर ।
सहित कुटुंब बनारसी, आए फत्तेपूर ॥ १४०

चौपई

फत्तेपुरमहं आए तहाँ । ओसवालके घर हैं जहाँ ॥
बासू साह अध्यातम जान । बसै बहुत तिन्हकी संतान ॥ १४१
बासू-पुत्र भगौतीदास । तिन दीनौ तिन्हकौं आवास ॥
तिस मंदिरमैं कीनौ बास । सहित कुटुंब बनारसिदास ॥ १४२

दोहा

सुख समाधिसौं दिन गए, करंत सु केलि बिलास[3] ।
चीठी आई बापकी, चले इलाहाबास ॥ १४३
चले प्रयाग बनारसी, रहे फतेपुर लोग ।
पिता-पुत्र दोऊ मिले, आनंदित बिधि-जोग ॥ १४४

---

१ **ब** नुकती । २ **ब** इक । ३ **ब** करते सकल विलास ।

चौपई

खरगसेन जौंहरी उदार । करै जवाहरको बेपार[१] ॥
दानिसाहजीकी सिरकार । लेवा देई रोक उधार ॥ १४५
च्यारि[२] मास बीते इस भांति । कबहूं दुख कबहूं सुख सांति ॥
फिरि आए फत्तेपुर गांउ । सकल कुटुंब भयौ इक ठांउ ॥ १४६
मास दोई[३] बीते इस बीच । गयौ[४] आगरे सुन्यौ किलीच ॥
खरगसेन परिवारसमेत । फिरि आए आपनै निकेत ॥ १४७
जहां तहांसौं सब जौंहरी । प्रगटे जथा गुपत भौंहरी ॥
संबत सोलह सै छप्पनै । लागे सब कारज आपनै ॥ १४८
बरस एकलौं बरती छेम । आए साहिब साहि सलेम ॥
बड़ा साहिजादा जगबंद । अकबर पातिसाहिकौ नंद ॥ १४९
आखेटक कोल्हूवन काज । पातिसाहकी भई अवाज ।
हाकिम इहां जौनपुर थान । लघु किलीच नूरम सुलितान ॥१५०
ताहि हुकम अकबरकौ भयौ । सहिजादा कोल्हूवन गयौ ॥
तातैं सो किछु कर तू जेम । कोल्हूवन नहिं जाय सलेम ॥१५१
एहि बिधि अकबरकौ फुरमान । सीस चढ़ायौ नूरम खान ॥
तब तिन नगर जौनपुर बीच । भयौ गढ़पती ठानी मीच ॥१५२
जहां तहां रूधी सब बाट । नांउ न चलै गोमती घाट ॥
पुल दरवाजे दिए कपाट । कीनौ तिन विग्रहकौ ठाठ ॥ १५३
राखे बहु पायक असवार । चहु दिसि बैठे चौकीदार ॥
कोट कंगूरेन्ह राखी नाल । पुरमैं भयौ ऊंचला[५] चाल ॥ १५४
करी बहुत गढ़ संजोवनी । अंन बस्त्र[६] जलकी ढोवनी ॥
जिरह जीन बंदूक अपार । बहु दारू नांना हथियार ॥ १५५
खोलि खजाना खरचै दाम । भयौ आपु सनमुख संग्राम ।
प्रजालोग सब व्याकुल भए । भागे चहू ओर उठि गए ॥ १५६

---

१ ब ब्यौहार । २ ब च्यार । ३ ब दोक । ४ ब सुनी आगरै गयौ कलीच । ५ स उचाला । ६ ब बस्तु ।

महा नगरि सो भई उजार । अब आई आई यह धार ॥
सब जोंहरी मिले इक ठौर । नगरमांहिं नर रह्यौ न और ॥१५७
क्या कीजै अब कौन बिचार । मुसकिल भई सहित परिवार ॥
रहे न कुसल न भागे खेम । पकरी सांप छछूंदरि जेम ॥ १५८
तब सब मिलि नूरमके पास । गए जाइ कीनी अरदास ॥
नूरम कहै सुनहु रे साहु । भावै ईहां रहौ कै जाहु ॥ १५९
मेरो मरन बन्यौ है आइ । मैं क्या तुमकौं कहौं उपाइ ॥
तब सब फिरि आए निज धाम । भागहु जो कछु करहि सो राम ॥

दोहा

आप आपकौं सब भगे, एकहि एक न साथ ।
कोऊ काहूकी सरन, कोऊ कहूं अनाथ ॥ १६१ ॥

चौपई

खरगसेन आए तिस ठांउ । दूलहसाह गए जिस गांउ ॥
लछिमनपुरा नांउकौ बास । तहां चौधरी लछिमनदास ॥ १६२
तिन लै राखे जंगलमांहिं । कीनौं कौल बोल दै बांहिं ॥
इहि बिधि बीते दिवस छ सात । सुनौ जौनपुरकी यह बात ॥१६३
साहि सलीम गोमती तीर । आयौ तब पठयौ इक मीर ॥
लालाबेग मीरकौ नांउ । ह्वै वकील आयौ तिस ठांउ ॥ १६४
नरम गरम कहि ठाढ़ौ भयौ । नूरमकौं लिवाइ लै गयौ ॥
जाइ साहके पकरे पाइ । निरभै किया गुनह बकसाइ ॥ १६५
जब यह बात सुनी इस भांति । तब सबके मन बरती सांति ॥
फिरि आए निज निज घर लोग । निरभय भए गयौ भय रोग ॥१६६
खरगसेन अरु दूलह साहु । इनहू पकरी घरकी राहु ॥
सपरिवार आए निज धाम । लागे अपने अपने काम ॥ १६७
इस अवसर बानारसि बाल । भयौ प्रवान चतुर्दस साल ॥
पंडित देवदत्तके पास । किछु विद्या तिन करी अभ्यास ॥ १६८

---

१ ब अब आई धार । २ अ भावै इहा उहाकौ जाहु । ३ ब गांउके पास । ४ ब सुनी जौनपुरकी कुसलात । ५ ब लागे आप आपने काम ।

पढ़ी ' नाममाला ' सै दोइ । और ' अनेकारथ ' अवलोइ ॥
जोतिस अलंकार लघु कोक । खंड स्फुट सै च्यारि सिलोक ॥१६९
विद्या पढ़ि विद्यामैं रमै । सोलह सै सतावने समै ॥
तजि कुल-कान लोककी लाज । भयौ बनारसि आसिखबाज ॥ १७०
करै आसिखी धरि मंन धीर । दरदबंद ज्यौं सेख फकीर ॥
इकटक देखि ध्यान सो धरै । पिता आपनेकौ धन हरै ॥ १७१
चोरै चूंनी मानिक मनी । आनै पान मिठाई घनी ॥
भेजै पेसकसी हित पास । आपु गरीब कहावै दास ॥ १७२
इस अंतर चौमास बितीत । आई हिमरितु ब्यापी सीत ॥
खरतर अभै धरम उवझाइ । दोइ सिष्यजुत प्रकटे आइ ॥ १७३
भानचंद मुनि चतुर विशेष । रामचंद बालक गृहि-भेष ॥
आए जती जौनपुरमांहिं । कुल श्रावक सब आवहिं जांहिं ॥ १७४
लखि कुल-धरम बनारसि बाल । पिता साथ आयौ पोसाल ॥
भानचंदसौं भयौ सनेह । दिन पोसाल रहै निसि गेह ॥ १७५
भानचंदपै विद्या सिखै । ' पंचसंधि ' की रचना लिखै ॥
पढ़ै सनातर-बिधि अस्तोन । फुट सिलोक बहुबरनै कौन ॥१७६
सामाइक पडिकौंना पंथ । ' छंद ' ' कोस ' ' स्रुतबोध ' गरंथ ॥
इत्यादिक विद्या मुखपाठ । पढ़ै सुद्ध साधै गनें आठ ॥ १७७
कबहू आइ सबद उर धरै । कबहू जाइ आसिखी करै ॥
पोथी एक बनाई नई । मित हजार दोहा चौपई ॥ १७८
तामैं नवरस रचना लिखी । पै बिसेस बरनन आसिखी ॥
ऐसे कुकवि बनारसि भए । मिथ्या ग्रंथ बनाए नए ॥ १७९

दोहा

कै पढ़ना कै आसिखी, मगन दुहू रसमाहिं ॥
खान-पानकी सुध नहीं, रोजगार किछु नाहिं ॥ १८०

---

१ अ कन धीर । २ अ गुन ।

चौपई

ऐसी दसा बरस द्वै रही । मात पिताकी सीख न गही ।
करि आसिखी पाठ सब पढे । संबत सोलह सै उनसठे ॥ १८१

दोहा

भए पंचदस बरसके, तिस ऊपर दस मास ।
चले पाउजा करनकौं, कवि बनारसीदास ॥ १८२
चढ़ि डोली सेवक लिए, भूषन बसन बनाइ ।
खैराबाद नगरविषै, सुखसौं पहुंचे आइ ॥ १८३

चौपई

मास एक जब भयौ बितीत । पौष मास सित² पख रितु सीत ॥
पूरब करम उदै संजोग । आकसमात बातकौ रोग ॥ १८४

दोहा

भयौ बनारसिदासतन, कुष्टरूप सरबंग ।
हाड़ हाड़ उपजी बिथा, केस रोम भुव-भंग ॥ १८५
बिस्फोटक अगनित भए, हस्त चरन चौरंग ।
कोऊ नर साला ससुर, भोजन करइ न संग ॥ १८६
ऐसी असुभ दसा भई, निकट न आवै कोइ ।
सासू और विवाहिता, करहिं सेव तिय दोइ ॥ १८७
जल भोजनकी लेहिं सुध, देहिं आनि मुखमाहिं ।
ओखद ल्यावहिं अंगमैं, नाक मूंदि उठि जाहिं ॥ १८८

चौपई

इस अवसर नर नापित कोइ । ओखद-पुरी खवावै सोइ ॥
चने अलूने भोजन देइ । पैसा टका किछू नहिं लेइ ॥ १८९
चारि मास बीते इस भांति । तब किछु बिथा भई उपसांति ॥
मास दोइ औरौ चलि गए । तब बनारसी नीकै भए ॥ १९०

---

१ अ पाव सब पढ़े । २ अ रितु सित पख सीत । ३ अ बात-संयोग । ४ ब देहमैं ।

दोहा

न्हाइ धोइ ठाढ़े भए, दै नाऊकौं दान।
हाथ जोड़ि बिनती करी, तू मुझ मित्र समान ॥ १९१
नापित भयौ प्रसंन अति, गयो आपने धाम।
दिन दस खैराबादमैं, कियौ और बिसराम ॥ १९२
फिर आए डोली चढ़े, नगर जौनपुरमांहिं।
सासु ससुर अपनी सुता, गौनैं भेजी नांहिं ॥ १९३
आइ पिताके पद गहे, मां रोई उर ठोकि।
जैसी चिरी कुरीजकी, त्यौं सुत दसा बिलोकि ॥ १९४
खरगसेन लज्जित भए, कुवचन कहे अनेक।
रोए बहुत बनारसी, रहे चकित छिन एक ॥ १९५
दिन दस [बीस] परे दुखी, बहुरि गए पोसाल।
कै पढ़ना कै आसिखी, पकरी पहली चाल ॥ १९६

चौपई

मासि चारि ऐसी बिधि भए। खरगसेन पटने उठि गए ॥
फिर बनारसी खैराबाद। आए मुख लज्जित सविषाद ॥ १९७
मास एक फिरि दूजी बार। घरमैं रहे न गए बजार ॥
फिर उठि चले नारि लै संग। एक सुडोली एक तुरंग ॥ १९८
आए नगर जौनपुर फेरि। कुल कुटुंब सब बैठे घेरि ॥
गुरुजन लोग देहिं उपदेस। आसिखबाज सुनैं दरबेस ॥ १९९
बहुत पढ़ैं बांभन अरु भाट। बनिकपुत्र तो बैठे हाट ॥
बहुत पढ़ै सो मांगै भीख। मानहु पूत बड़ेकी सीख ॥ २००

दोहा

इत्यादिक स्वारथ बचन, कहे सबनि बहु भांति।
मानै नहीं बनारसी, रह्यौ सहज-रस मांति ॥ २०१

चौपाई

फिर पोसाल भानपै पढ़ै, आसिखबाजी दिन दिन बढ़ै ॥
काहू कह्यौ न मानै कोइ, जैसी गति तैसी मति होइ ॥ २०२

कर्मोधीन बनारसि रमै, आयौ संवत साठा समै ॥
साठै संवत एती बात, भई जु कछु कहौं विख्यात ॥ २०३
साठै करि पटनैंसौं गौन। खरगसेन आए निज भौन ॥
साठै ब्याही बेटी बड़ी। बितरी पहली संपति गड़ी ॥ २०४
बानारसिकैं बेटी हुई। दिवस छ सातमाहिं सो मुई ॥
जहमति परे बनारसिदास। कीनैं लंघन बीस उपास ॥ २०५
लागी छुधा पुकारै सोइ। गुरुजन पथ्य देइ नहिं कोइ ॥
तब मांगै देखनकौं रोइ। आध सेरकी पूरी दोइ ॥ २०६
खाट हेठ लै धरी दुराइ। सो बनारसी भखी चुराइ ॥
वाही पथसौं नीकौ भयौ। देख्यौ लोगनि कौतुक नयौ ॥ २०७
साठै संवत करि दिढ़ हियौ। खरगसेन इक सौदा लियौ ॥
तामैं भए सौगुने दाम। चहल पहल हूई निज धम ॥ २०८
यह साठे संबतकी कथा। ज्यौं देखी मैं बरनी तथा ॥
खमै उनसठे सावन बीच। कोऊ संन्यासी नर नीच ॥ २०९
आइ मिल्यौ सो आकसमात। कही बनारसिसौं तिन बात ॥
एक मंत्र है मेरे पास। सो बिधिरूप जपै जो दास ॥ २१०
बरस एक लौं साधै नित्त। दृढ़ प्रतीत आनै निज चित्त ॥
जपै बैठि छेरछोभी (?) माहिं। भेद न भाषै किस ही पाहिं ॥ २११
पूरन होइ मंत्र जिस बार। तिसके फलका कहूं बिचार ॥
प्रात समय आवै गृहद्वार। पावै एक पड्या दीनार ॥ २१२
बरस एक लौं पावै सोइ। फिरि साधै फिरि ऐसी होइ ॥
यहु सब बात बनारसि सुनी। जान्या महापुरुष है गुनी ॥ २१३
पकरे पाइ लोभके लिए। मांगै मंत्र बीनती किए ॥
तब तिन दीनौ मंत्र सिखाइ। अक्खर कागदमाहिं लिखाय ॥ २१४
वह प्रदेस उठि गयौ स्वतंत्र। सठ बनारसी साधै मंत्र ॥
बरस एक लौं कीनौ खेद। दीनौ नहीं औरकौं भेद ॥ २१५

---

१ अ प्रतिकी टिप्पणीमें इस लड़कीका नाम 'वीरबाई' लिखा है।
२ ब रक्षोबी स छनषोवी।

बरस एक जब पूरा भया। तब बनारसी द्वारैं गया॥
नीची दिष्टि बिलोकै धरा। कहुं दीनार न पावै परा॥ २१६॥
फिर दूजै दिन आयौ द्वार। सुपने नहिं दीखै दीनार॥
व्याकुल भयौ लोभके काज। चिंता बढ़ी न भावै नाज॥ २१७
कही भानसौं मनकी दुधा। तिनि जब कही बात यह मुधा॥
तव बनारसी जानी[1] सही। चिंता गई छुधा लहलही॥ २१८
जोगी एक मिल्यौ तिस आइ। बानारसी दियौ भौंदाइ॥
दीनो एक संखोली हाथ। पूजाकी सामग्री साथ॥ २१९
कहै सदासिव मूरति एह। पूजै सो पावै सिव-गेह॥
तब बनारसी सीस चढ़ाइ। लीनी नित पूजै मन लाइ॥ २२०
ठानि सनानि भगति चित धरै। अष्टप्रकारी पूजा करै॥
सिव सिव नाम जपै सौ बार। आठ अधिक मन हरख अपार॥२२१

दोहा

पूजै तब भोजन करै, अंनपूजै[2] पछिताइ।
तासु दंड अगिले दिवस, रूखा भोजन खाइ॥ २२२
ऐसी बिधि बहु दिन भए, करत गुपत सिवपूज।
आयौ संबत इकसठा, चैत मास सित दूज॥ २२३
साहिब साह सलीमकौ, हीरानंद मुकीम।
ओसवाल कुल जौंहरी, बनिक वित्त[3]की सीम॥ २२४
तिन प्रयागपुर नगरसौं, कीनौ उद्दम सार।
संघ चलायौ सिखरकौ, उतर्‌यौ गंगापार॥ २२५
ठौर ठौर पत्री दई, भई खबर जिततित्त।
चीठी आई सेनकौं, आवहु जात-निमित्त॥ २२६
खरगसेन तब उठि चले, ह्वै तुरंग असवार।
जाइ नंदजीकौं मिले, तजि कुटंब घरबार॥ २२७

१ ब मानी। २ ब बिन पूजै। ३ अ वृत्ति।

चौपई

खरगसेन जात्राकौं गए । बानारसी निरंकुस भए ॥
करै कलह मातासौं नित्त । पार्श्वनाथकी जात निमित्त ॥ २२८
दही दूध घृत चावल चने । तेल तंबोल पहुप अनगिने ॥
इतनी बस्तु तजी ततकाल । खन लीनौ कीनौ हठ बाल ॥ २२९

दोहा

चैत महीनै खन लियौ, बीते मास छ सात ।
आई पून्यौ कातिकी, चले लोग सब जात ॥ २३०
चले सिवमती न्हानकौं, जैनी पूजन पास ।
तिनके साथ बनारसी, चले बनारसिदास ॥ २३१
कासी नगरीमैं गए, प्रथम नहाए गंग ।
पूजा पास सुपासकी , कीनी धरि मन रंग ॥ २३२
जे जे खनकी बस्त सब, ते ते मोल मंगाइ ।
नेवज ज्यौं आगें धरे, पूजे प्रभुके पाइ ॥ २३३
दिन दस रहे बनारसी, नगर बनारसिमांहिं ।
पूजा कारन द्योहरै, नित प्रभात उठि जांहिं ॥ २३४
इहि बिधि पूजा पासकी, कीनी भक्तिसमेत ।
फिरि आए घर आपनै, लिए संखोली सेत ॥ २३५
पूजा संख महेसकी, कर [ले] तौ किछु खांहिं ।
देस विदेस इहां उहां, कबहूं भूली नांहिं ॥ २३६

सोरठा

संखरूप सिव देव, महा संख बानारसी ।
दोऊ मिले अबेव, साहिब सेवक एकसे ॥ २३७

दोहा

इस ही बीचि उरे परे, खरगसेनके भौन ।
भयौ एक अलपायु सुत, ताहि बखानै कौन ॥ २३८

---

१ ब पारस जिनकी। २ ब प्रथमै न्हाये। ३ ब चंग। ४ ब धोहरे। ५ ब अभेव।

चौपई

संबत सोलह सै इकसठे । आए लोग संघसौं नठे ॥
केई उबरे केई मुए । केई महा जहमती हुए ॥ २३९
खरगसेन पटनैमौं आइ । जहमति परे महा दुख पाइ ॥
उपजी बिथा उदरके[1] रोग । फिरि उपसमी आउबेलजोग[2] ॥ २४०
संघ साथ आए निज धाम । नंद जौनपुर कियौ मुकाम ॥
खरगसेन दुख पायौ बाट । घरमैं आइ परे फिर खाट ॥ २४१
हीरानंद लोग मनुहार । रहे जौनपुरमौं दिन च्यार ॥
पंचम दिवस पारके[3] बाग । छट्ठे दिन उठि चले प्रयाग ॥ २४२

दोहा

संघ फूटि चहुं दिसि गयौ, आप आपकौ होइ ।
नदी नांव संजोग ज्यौं, बिछुरि मिलै नहिं कोइ ॥ २४३

चौपई

इहि बिधि दिवस केउकै[4] चलि गए । खरगसेनजी नीके भए ॥
सुख समाधि बीते दिन घने । बीचि बीचि दुख जाहिं न गने ॥ २४४

दोहा

इस अवसर सुत अवतर्‍यौ, बानारसिके गेह ।
भव पूरन करि मरि गयौ, तजि दुर्लभ नरदेह ॥ २४५

चौपई

संबत सोलह सै बासठा । आयौ कातिक[5] पावस नठा ॥
छत्रपति अकबर साहि जलाल । नगर आगरे कीनौं काल ॥२४६
आई खबर जौनपुरमाह । प्रजा अनाथ भई बिनु नाह ॥
पुरजन लोग भए भयभीत । हिरदै व्याकुलता मुख पीत ॥ २४७

---

१ ब उदरमैं । २ ब आरवल । ३ ब खार । ४ ब कैक । ५ ब कातिग ।

दोहा

अकसमात बानारसी, सुनि अकबरकौ काल ।
सीढ़ी परि बैठ्यौ हुतो, भयौ भरम चित चाल ॥ २४८
आइ तंवाला गिरि पर्यौ, सक्यौ न आपा राखि ।
फूटि भाल लोहू चल्यौ, कह्यौ 'देव' मुख भाखि ॥ २४९
लागी चोट पखानकी, भयौ गृहांगन लाल ।
हाइ हाइ सब करि उठे, मात तात बेहाल ॥ २५०

चौपई

गोद उठाय माइनैं लियौ । अंबर जारि घाउमैं दियौ ॥
खाट बिछाय सुबायौ बाल । [2]माता रुदन करै असराल ॥ २५१
इस ही बीच नगरमैं सोर । भयौ उदंगल चारिहु ओर ॥
घर घर दर दर दिए कपाट । हटवानी नहिं बैठें हाट ॥ २५२
भले वस्त्र अरु भूसन भले । ते सब गाड़े धरती तले ॥
हंडवाई गाड़ी कहुं और । नगदी माल निभरमी ठौर ॥ २५३
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र । लोगन्ह पहिरे मोटे बस्त्र ॥
ठाढ़ो कंबल अथवा खेस । नारिन्ह पहिरे मोटे बेस ॥ २५४
ऊंच नीच कोउ न पहिचान । धनी दरिद्री भए समान ॥
[3]चोरि धारि दीसै कहुं नाहिं । यौं ही अपभय लोग डराहिं ॥ २५५

दोहा

धूम धाम दिन दस रही, बहुरौ बरती सांति ।
चीठी आई सबनिकै, समाचार इस भांति ॥ २५६
प्रथम पातिसाही करी, बावन बरस जलाल ।
अब सोलहसै बासठै, कातिग हूवो काल ॥ २५७
अकबरकौ नंदन बड़ौ, साहब साह सलेम ।
नगर आगरेमैं तखत, बैठौ अकबर जेम ॥ २५८

---

१ ब 'तिवाला'। २ अ मदन । ३ ब चोर धार ।

नांउ धरायौ नूरदी, जहांगीर सुलतान।
फिरी दुहाई मुंलकमैं, बरती जहां तहां आन ॥ २५९
इहि बिधि चीठीमें लिखी, आई घर घर बार।
फिरी दुहाई जौनपुर, भयौ सु जयजयकार ॥ २६०

चौपई

खरगसेन घर [फिर] आनंद। मंगल भयौ गयौ दुख-दंद ॥
बानारसी कियौ असनान। कीजै उच्छव दीजै दान ॥ २६१
एक दिवस बानारसिदास। एकाकी ऊपर आवास ॥
बैठ्यौ मनमैं चिंतै एम। मैं सिव-पूजा कीनी केम ॥ २६२
जब मैं गिरयौ पर्यौ मुरझाय। तब सिव कछु न करी सहाय ॥
यहु बिचारि सिव-पूजा तजी। लखी प्रगट सेवामैं कजी (?) ॥ २६३
तिस दिनसौं पूजा न सुहाइ। सिव-संखोली धरी उठाइ ॥
एक दिवस मित्रन्हके साथ। नौकृत पोथी लीनी हाथ ॥ २६४
नदी गोमतीके बिच आइ। पुलके उपरि बैठे जाइ ॥
बांचै सब पोथीके बोल। तब मनमैं यह उठी कलोल ॥ २६५
एक झूठ जो बोलै कोइ। नरक जाइ दुख देखै सोइ ॥
मैं तो कलपित बचन अनेक। कहे झूठ सब साचु न एक ॥२६६
कैसे बनै हमारी बात। भई बुद्धि यह आकसमात ॥
यहु कहि देखन लाग्यौ नदी। पोथी डार दई ज्यौं रदी ॥ २६७
हाइ हाइ करि बोले मीत। नदी अथाह महाभयभीत ॥
तामैं फैलि गए सब पत्र। फिरि कहु कौन करै एकत्र ॥ २६८
घड़ी द्वैक पछतानें मित्र। कहैं कर्मकी चाल विचित्र ॥
यहु कहिकैं सब न्यारे भए। बनारसी अपनें घर गए ॥ २६९
खरगसेन सुनि यह बिरतंत। हूए मनमैं हरषितवंत ॥
सुतके मन ऐसी मति जगै। घरकी नांउ रहीसी लगै ॥ २७०

---

१ ब जगतमैं। २ अ चिठी। ३ अ कियौ है स्नान। ४ ब बजी। ५ ब मित्रन। ६ ब तट। ७ ब बानारसि आपुन।

दोहा

तिस दिनसौं बानारसी, करै धरमकी चाह।
तजी आसिखी फासिखी, पकरी कुलकी राह ॥ २७१
कहैं दोष कोउ न तजै, तजै अवस्था पाइ।
जैसे[1] बालककी दसा, तरुन भए मिटि जाइ ॥ २७२
उदै होत सुभ करमके, भई असुभकी हानि।
तातैं तुरित बनारसी, गही धरमकी बानि ॥ २७३

चौपई

नित उठि प्रात जाइ जिनभौन। दरसन बिनु न करै दंतौन।
चौदह नेम विरति उच्चरै। सामायिक पडिकोंना करै ॥ २७४
हरी जाति राखी परवां न। जावजीव बैंगन-पचखान।
पूजा विधि साधै दिन आठ। पंढै[2] बीनती पद मुख-पाठ ॥ २७५

दोहा

इहि बिधि जैनधरम कथा, कहै सुनै दिन रात।
होनहार कोउ न लखै, अलख जीवकी जात ॥ २७६
तब अपजसी बनारसी, अब जस भयौ विख्यात।
आयौ संबत चौसठा, कहौं तहांकी बात ॥ २७७
खरगसेन श्रीमालकैं, हुती सुता द्वै ठौर।
एक बियाही जौनपुर, दुतिय कुमारी और ॥ २७८
सोऊ ब्याही चौसठै, संबत फागुन मास।
गई पाडलीपुर विषैं, करि चिंता दुख नास ॥ २७९
बानारसिकैं दूसरौ, भयौ और सुत कीर।
दिवस कैकुमें उड़ि गयौ, तजि पींजरा सरीर ॥ २८०

चौपई

कबहूं दुख कबहूं सुख सांति। तीन बरस बीते इस भांति ॥
लच्छन भले पुत्रके लखे। खरगसेन मनमाहिं हरखे ॥ २८१

---

१ अ जैसी। २ अ पूजापाठ पढ़ै मुखपाठ।

संबत सोलह सै सतसठा । घरका माल किया एकठा ॥
खुला जवाहर और जड़ाउ । कागदमांहि लिख्या सब भाउ ॥२८२
द्वै पोंहची द्वै मुद्रा बनी । चौबिस[1] मानिक चौतिस मनी ॥
नौ नीले पन्ने दस दून । चारि गांठि चूंनी परचून ॥ २८३
एती बस्तु जवाहर रूप । घृत मन बीस तेल द्वै कूप ॥
लिए जौनपुर होई[2] दुकूल । मुद्रा द्वै सत लागी मूल ॥ २८४
कछु घरके कछु परके दाम । रोक उधार चलायौ काम ।
जब सब सौंज[3] भई तैयार । खरगसेन तब कियौ बिचार ॥ २८५
सुत बनारसी लियौ बुलाय । तासौं बात कही समुझाय ।
लेहु साथ यह सौंज[3] समस्त । जाइ आगरे बैंचहु बस्त ॥ २८६
अब गृहभार कंध तुम लेहु । सब कुटुंबकौं रोटी देहु ॥
यहु कह तिलक कियौ[4] निज हाथ । सब सामग्री दीनी साथ ॥२८७

दोहा

गाड़ी भार लदाइकैं, रतन जतनसौं पास ।
राखे निज कच्छाविषैं, चले बनारसिदास ॥ २८८
मिली साथ गाड़ी बहुत, पांच कोस नित जांहि ।
क्रम क्रम पंथ उलंघकै, गए इटावेमांहि ॥ २८९
नगर इटाएके निकट, करि गाड़िन्हकौ घेर ।
उतरे लोग उजारिमैं, हूई संध्या-बेर ॥ २९०
घन घमंड आयौ बहुत, बरसन लाग्यौ मेह ।
भाजन लागे लोग सब, कहां पाइए गेह ॥ २९१
सौरि उठाइ बनारसी, भए पयादे पाउ ।
आए बीचि सराइमैं, उतरे द्वै उंबराउ[5] ॥ २९२
भई भीर बाजारमैं, खाली कोउ न हाट ।
कहूं ठौर नहिं पाइए, घर घर दिए कपाट ॥ २९३

---

१ ब 'चौतिस मानिक चौविस मनी।' २ ब होहि । ३ ब सौज ।
४ ब दियो । ५ ब उमराव ।

फिरत फिरत फावा भए, बैठन कहै न कोइ।
तलै कीचसौं पग भरे, ऊपर बरसै तोइ ॥ २९४
अंधकार रजनी समै, हिम रितु अगहन मास।
नारि एक बैठन कह्यौ, पुरुष उठौ लै बांस ॥ २९५
तिनि उठाइ दीनै बहुरि, आए गोपुर पार।
तहां झोंपरी तनकसी, बैठे चौकीदार ॥ २९६
आए तहां बनारसी, अरु श्रावक द्वै साथ।
ते बूझैं तुम कौन हौ, दुःखित दीन अनाथ ॥ २९७
तिनसौं कहै बनारसी, हम बेपारी लोग।
बिना ठौर व्याकुल भए, फिरइं करम संजोग ॥ २९८

चौपई

तब तिनके चित उपजी दया। कहैं इहां बैठो करि मया॥
हम सब नर अपने घर जाहिं। तुम निसि बसौ झोंपरी माहिं॥२९९
औरो सुनौ हमारी बात। सरियैति (?) खबर भए परभात॥
बिनु तहकीक जान नहिं देइ। तब बकसीस देहु सोइ लेहि॥ ३००
मानी बात बनारसि ताम। बैठे तहां पायौ विश्राम॥
जल मंगाइकै धोए पाउ। भीजे बस्त्रन्ह दीनी बाउ॥ ३०१
त्रिन बिछाइ सोए तिणं ठौर। पुरुष एक जोरावर और॥
आया कहै इहां तुम कौन। यह झोंपरी हमारो भौन॥ ३०२
सैन करूं मैं खाट बिछाइ। तुम्ह किस ठाहर उतरे आइ॥
कै तौ तुम अब ही उठि जाहु। कै तौ मेरी चाबुक खाहु॥ ३०३
तब बनारसी ह्वै हलबले। बरसत मेह बहुरि उठि चले॥
उनि दयाल होइ पकरी बांह। फिरि बैठाए छायामांह॥ ३०४
दीनो एक पुरानो टाट। ऊपर आनि बिछाई खाट।
कहै टाटपर कीजै सैन। मुझे खाट बिनु परै न चैन॥ ३०५

---

१ ब फिरत सबै कावा भये। २ अ विषै। ३ अ सरिपत। ४ ब सो। ५ ब तिस।

'एवमस्तु' बानारसि कहै । जैसी जाहि परै सो सहै ॥
जैसा कातै तैसा बुनै । जैसा बोवै तैसा लुनै ॥ ३०६
पुरुष खाटपर सोया भले । तीनौ जनें खाटके तले ॥
सोए रजनी भई बितीत । ओढ़ी सौरि न ब्यापी सीत ॥ ३०७
भयौ प्रात आए फिरि तहां । गाड़ी सब उतरी ही जहां ॥
बरसा गई भई सुख सांति । फिरि उठि चले नित्यकी भांति ॥ ३०८
आए नगर आगरे बीच । निसि दिन फिर बरसा अरु कीच ।
कपरा तेल घीउ धरि पार । आपु छरे आए उर वार ॥ ३०९
उर चिंतवै बनारसिदास । किस दिसि जाइ कहां किस पास ॥
सोचि सोचि यह कीनौ ठीक । मोतीकटला कियौ रफीक ॥ ३१०
तहां चांपसीके घर पास । लघु बहनेऊ वंदीदास ॥
तिसके डेरै जाय तुरंत । सुनियै 'भला सगा अरु संत' ॥ ३११
यहु बिचारि आए तिस पाहिं । बहनेऊके डेरेमाहिं ॥
हितसौं बूझै बंदीदास । कपरा घीउ तेल किस पास ॥ ३१२
तब बनारसी बोलै खरा । उधरनकी कोठीमों धरा ॥
दिवस कैकु जब बीते और । डेरा जुदा लिया इक ठौर ॥ ३१३
पट गठरी राखी तिसमाहि । नित्य नखासे आवहि जाहि ॥
बस्त्र बेंचि जब लेखा किया । ब्याज-मूर दै टोटा दिया ॥ ३१४
एक दिवस बानारसिदास । गए पार उधरनके पास ॥
बेंचा घीऊ तेल जब झारि । बढ़ती नफा रुपैया च्यारि ॥ ३१५
हुंडी आई दीनैं दाम । बात उहांकी जानै राम ॥
बेंचि खोंचि आए उर वार । भए जवाहर बेंचनहार ॥ ३१६
देहि ताहि जो मांगै कोइ । साधु असाधु न देखै टोइ ॥
कोऊ बस्तु कहूं लै जाइ । कोऊ लेइ गिरों धरि खाइ ॥ ३१७
नगर आगरेकौ ब्योपार । मूल न जानै मूढ़ गंवार ॥
आया उदै असुभकौ जोर । घटती होत चली चहु ओर ॥ ३१८

---

१ ब पार। २ अ सुनइ । ३ ब पार ।

दोहा

नारे माहिं इजारके, बंध्यौ हुतो दुल म्यान।
नारा टूटयौ गिरि पर्यौ, भयौ प्रथम यह ग्यान ॥ ३१९
खुला जवाहर जो हुतो, सो सब थ्यो उसमाहिं ॥
लगी चोट गुपती सही, कही न किस ही पाहिं ॥ ३२०
मानिक नारेके पले, बांध्यौ साटै उचाट ॥
धरी इजार अलंगनी, मूसा ले गया काटि ॥ ३२१
पहुंची दोइ जड़ाउकी, बैंची गाहकपाहिं।
दाम करोरी लेइ रह्यौ, परि देवाले माहिं ॥ ३२२
मुद्रा एक जड़ाउकी, ऐसी डारी खोइ।
गांठि देत खाली परी, गिरी न पाई सोई ॥ ३२३
रेज परेजी बस्तु कछु, बुगचा बागे दोइ ॥
हंडवाई घरमें रही, और बिसाति न कोइ ॥ ३२४

चौपई

इहि बिधि उदै भयौ जब पाप। दूलहलाइकै आई ताप ॥
तब बनारसी जहमति परे। लंघन दसनि कोररे करे ॥ २२५
फिर पथ लीनौं नीके भए। मास एक बाजार न गए ॥
खरगसेनकी चीठी घनी। आवहिं पै न देहि आपनी २२६

दोहा

उत्तमचंद जवाहरी, दूलहकौ लघु पूत।
सो बनारसीका बड़ा, बहनेऊ अरिभूत ॥ ३२७
तिनि अपने घरकौं दिए, समाचार लिखि लेख।
पूंजी खोइ बनारसी, भए भिखारी भेख ॥ ३२८
उहां जौनपुरमैं सुनी, खरगसेन यह बात ॥
हाइ हाइ करि आइ घर, कियौ बहुत उतपात ॥ ३२९

---

१ अ हुतो। २ ब नारेके सले। ३ ब सार उबाट। ४ ब पौहची।

कलह करी निज नारिसौं, कही बात दुख रोइ ॥
हम तौ प्रथम कही हुती, सुत आवै[1] घर खोइ ॥ ३३०
[2]कहा हमारा सब थया, भया भिखारी पूत ।
पूंजी खोई बेईया, गया बनजं[3]का सूत ॥ ३३१
भए निरास उसास भरि, करि घरमैं बकबाद ।
सुध बनारसीकी बहुरि, पठई खैराबाद ॥ ३३२
ऐसी बीती जौनपुर, इहां आगरेमांहिं ।
घरकी बस्तु बनारसी, बैचि बैचि सब खाहिं ॥ ३३३
लटा कुटा[4] जो किछु हुतौ, सो सब खायौ डारि ।
हुंडवाई खाई सकल, रहे टका द्वै चारि ॥ ३३४ ॥
तब घरमैं बैठे रहैं, जाइं न हाट बजार ।
मधुमालति मिरगावती, पोथी दोइ उदार[5] ॥ ३३५
ते बांचहिं रजनीसमै, आवहिं नर दस बीस ।
गावहिं अरु बातैं करहिं, नित उठि देहिं असीस ॥ ३३६
सो सामा घरमैं नहीं, जो प्रभात उठि खाइ ।
एक कचौरीवाल नर, कथा सुनै नित आइ ॥ ३३७
वाकी हाट उधार करि, लेहि कचौरी सेर ।
यह प्रासुक भोजन करहिं, नित उठि[6] सांझ सबेर ॥ ३३८
कब हू आवहि हाटमांहिं, कबहू डेरामाहिं ।
दसा न काहूसौं कहै, करज कचौरी खाहिं ॥ [7]३३९
एक दिवस बानारसी, समौ पाइ एकंत ।
कहै कचौरीवालसौं, गुपत गेह-बिरतंत ॥ ३४०
तुम उधार कीनौ बहुत, आगै अब जिन देहु ।
मेरे पास किछू नहीं, दाम कहांसौं लेहु ॥ ३४१
कहै कचौरीवाल नर, बीस रुपैया खाहु ।
तुमसौं कोऊ न कछु कहै, जहां भावै तहां जाहु ॥ ३४२

---

१ अ आपै । २ ब कहा हमारा सब हुया । ३ अ बनजग । ४ ब कटा । ५ ब उचारि । ६ ब प्रति । ७ अ प्रतिमें यहाँ ३४१ नम्बर पड़ा है और आगे अन्त तक यह दो नम्बरोंकी भूल चली गई है ।

तब चुप भयौ बनारसी, कोऊ न जानै बात ।
कथा कहै बैठौ रहै, बीते मास छ-सात ॥ ३४३
कहौं एक दिनकी कथा, तांबी ताराचंद ।
ससुर बनारसिदासकौ, परबतकौ फरजंद ॥ ३४४
आयौ रजनीके समै, बानारसिके भौन ।
जब लौं सब बैठे रहे, तब लौं पकरी मौन ॥ ३४५
जब सब लोग बिदा भए, गए आपने गेह ।
तब बनारसीसौं कियौ, ताराचंद सनेह ॥ ३४६
करि सनेह बिनती करी, तुम नेउते परभात ।
कालि उहां भोजन करौ, आवस्सिक यहु बात ॥ ३४७

चौपई

यहु कहि निसि अपने घर गयौ । फिरि आयौ प्रभात जब भयौ ॥
कहै बनारसिसौं तब सोइ । चलिए घर अब भई रसोइ ॥ ३४८
तातैं अब चलिए इस बार । भोजन करि आवहु बाजार ॥
ताराचंद कियौ छल एह । बानारसी गयौ तिस गेह ॥ ३४९
भेज्यौ एक आदमी कोइ । लटा कुटा ले आयौ सोइ ॥
घरका भाड़ा दिया चुकाइ । पकरे बानारसिके पाइ ॥ ३५०
कहै बिनैसां तारा साहु । इस घर रहौ उहां जिन जाहु ॥
हठ करि राखे डेरामाहिं । तहां बनारसि रोटी खाहिं ॥ ३५१
इहि बिधि मास दोइ जब गए । धरमदासके साझी भए ॥ ॥
जसू अमरसी भाई दोइ । ओसवाल दिलवाली सोइ ॥ ३५२
करहिं जवाहर-बनज बहूत । धरमदास लघु बंधु [क] पूत ॥
कुविसन करै कुसंगति जाइ । खोवै दाम अमल बहु खाइ ॥ ३५३
यह लखि कियौ सीरकौ संच । दी पूंजी मुद्रा सै पंच ॥
धरमदास बानारसि यार । दोऊ सीर करहिं व्योपार ॥ ३५४

---

१ ब सु निज निज । २ ब उहां प्रभात रसोई होय । ३ अ दिवाली ।

दोऊ फिरैं आगरे मांझ । करहिं गस्त घर आवहिं सांझ ।
ल्यावहिं चूंनी मानिक मनी । बेंचहिं बहुरि खरीदहिं घनी ॥३५५
लिखैं रोजनामा खतिआइं । नामी भए लोग पतिआइं ॥
बैंचहि लैंहि चलावहिं काम । दिए कचौरीवाले दाम ॥ ३५६
भए रुपैया चौदह ठीक । सब चुकाइ दीनैं तहकीक ॥
तीन बार करि दीनौं माल । हरषित कियौ कचौरीबाल ३५७

दोहा

बरस दोइ साझी रहे, फिरि मन भयौ विषाद ।
तब बनारसीकी चली, मनसा खैराबाद ॥ ३५८
एक दिवस बानारसी, गयौ साहुके धाम ।
कहै चलाऊ हम भए, लेहु आपनें दाम ॥ ३५९

चौपई

जसू साह तब दियौ जुवाब । बैंचहु थैलीकौ असबाब ॥
जब एकठे हौहिं सब थोक । हमकौं दाम देहु तब रोक ॥ ३६०
तब बनारसी बैंची बस्त । दाम एकठे किए समस्त ॥
गनि दीनैं मुद्रा सै पंच । बाकी कछू न राखी रंच ॥ ३६१

दोहा

बरस दोइमैं दोइ सै, अधिके किए कमाइ ।
बेची बस्तु बजारमैं, बढ़ंता[3] गयौ समाइ ॥ ३६२
सोलह सै सत्तरि समै, लेखा कियौ अचूक ।
न्यारे भए बनारसी, करि लेखा द्वै टूक ॥ ३६३

चौपई

जो पाया सो खाया सर्व । बाकी कछू न बांच्या दर्व ॥
करी मसक्कति गई अकाथ । कौड़ी एक न लागी हाथ ॥ ३६४
निकसी घोंघी सागर मथा । भई हींगवालेकी कथा ॥
लेखा किया रूखतल बैठि । पूंजी गई गाड़िमैं पैठि ॥ ३६५

---

१ ब और । २ अ बजावहिं । ३ अ बिढ़ता । ४ अ वाचा । ५ अ योथी ।

सो बनारसीकी गति भई । फिरि आई दरिद्रता नई ॥
बरस डेढ़ लौं नाचे भले । ह्वै खाली घरकौं उठि चले ॥ ३६६
एक दिवस फिरि आए हाट । घरसौं चले गलीकी बाट ॥
सहज दिष्टि कीनी जब नीच । गठरी एक परी मग बीच ॥ ३६७
सो बनारसी लई उठाइ । अपने डेरे खोली आइ ॥
मोती आठ और किछु नाहिं । देखत खुसी भए मनमाहिं ॥
ताइत एक गढ़ायौ नयौ । मोती मेले संपुट दयौ ॥
बांध्यौ कटि कीनी बहु यत्न । जनु पायौ चिंतामनि रत्न ॥ ३६९
अंतरधन राख्यौ निज पास । पूरब चले बनारसिदास ॥
चले चले आए तिस ठांउ । खैराबाद नाम जहां गांउ ॥ ३७०
कल्ला साहु ससुरके धाम । संध्या आइ कियौ विश्राम ॥
रजनी वनिता पूछै बात । कहौ आगरेकी कुसलात ॥ ३७१
कहै बनारसि माया बैन । नारी कहै झूठ सब फैन ॥
तब बनारसी सांची कही । मेरे पास कछू नहिं सही ॥ ३७२
जो कछु दाम कमाए नए । खरच खाइ फिरि खाली भए ॥
नारी कहै सुनौ हे कंत । दुख सुखकौ दाता भगवंत ॥ ३७३

दोहा

समै पाइकै दुख भयौ, समै पाइ सुख होइ ।
होनहार सो ह्वै रहै, पाप पुन्न फल दोइ ॥ ३७४

चौपई

कहत सुनत अर्गलपुर बात । रजनी गई भयौ परभात ॥
लहि एकंत कंतके पानि । बीस रुपैया दीए आनि ॥ ३७५ ॥
ए मैं जोरि धरे थे दाम । आए आज तुम्हारे काम ॥
साहिब चिंत न कीजै कोइ । पुरुष जिए तो सब कछु होइ ॥ ३७६
यह कहि नारि गई मां पास । गुपत बात कीनी परगास ॥
माता काहूसौं जिनि कहौ । निज पुत्रीकी लज्जा बहौ ॥ ३७७

---

१ ब वनिता कहै सुनो तुम कंत । २ ब प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है ।

दोहा

थोरे दिनमैं लेहु सुधि, तो तुम मा मैं धीय।
नाहीं तौ दिन कैकुमैं, निकसि जाइगौ पीय ॥ ३७८

चौपई

ऐसा पुरुष लजालू बड़ा। बात न कहै जात है गड़ा ॥
कहै माइ जिन होहि उदास। द्वै सै मुद्रा मेरे पास ॥ ३७९
गुपत देहुं तेरे करमाहिं। जो वै बहुरि आगरे जाहिं।
पुत्री कहै धन्य तू माइ। मैं उनकौं निसि बूझौं जाइ ॥ ३८०
रजनी समै मधुर मुख भास। बनिता कहै बनारसि पास ॥
कंत तुम्हारौ कहा बिचार[1]। इहां रहौ कै करो ब्योहार (?) ॥३८१
बानारसी कहै तिय पाहिं। हम तू साथ जौनपुर जाहिं ॥
बनिता कहै सुनहु पिय बात। उहां महा बिपदा उतपात ॥ ३८२
तुम फिर जाहु आगरेमाहिं। तुमकौं और ठौर कहुं नाहिं ॥
बानारसी कहै सुन तिया। बिनु[2] धन मानुपका धिग जिया ॥३८३
दे धीरज फिरि बोलै बाम। करहु खरीद देहुं मैं दाम ॥
यह कहि दाम आनि गनि दिए। बात गुपत राखी निज हिए ॥३८४
तब बनारसी बहुरौ जगे। एती बात करनकौं लगे ॥
करैं खरीद धोवावैं चीर। ढूंढ़ै[3] मोती मानिक हीर ॥ ३८५
जोरहिं 'अजितनाथके छंद'। लिखहिं 'नाममाला' भरि बंद ॥
च्यारौं काज करति मन लाइ। अपनी अपनी बिरिया पाइ ॥३८६
इहि बिधि बहुत महीनें गए। च्यारि[4] काज सो पूरन भए ॥
करी 'नाममाला' सै दोइ। राखे 'अजित छंद' उर पोइ ॥३८७
कपरा धोइ भयौ तैयार। लियौ मोल मोतीकौ हार ॥
अगहन मास सुकल बारसी। चले आगरें बानारसी ॥ ३८८

---

१ अ ब विचार। २ ब धिग बिनु दाम पुरुषकौ जिया। ३ ब वृन्द।
४ ब चारि।

दोहा

बहुरौं आए आगरैं, फिरिकै दूजी बार ।
तब कटले परबेजके, आनि उतास्यौ भार ॥ ३८९

चौपई

कटलेमाहिं ससुरकी हाट । तहां करहि भोजनकौ ठाठ ॥
रजनी सोवहि कोठीमाहि । नित उठि प्रात नखासे जाहि ॥ ३९०
फेरि बैठि बहु करै उपाइ । मंदा कपरा कछु न बिकाइ ।
आवहि जाहि करहि अति खेद । नहिं समुझै भावीकौ भेद ॥३९१

दोहा

मोती-हार लियौ हुतौ, दै मुद्रा चालीस ।
सो बैंच्यौ सत्तरि उठे, मिले रुपइआ तीस ॥ ३९२

चौपई

तब बनारसी करै बिचार । भला जवाहरका ब्यापार ॥
हुए पौन दूनें इस माहिं । अब सो बस्त्र खरीदे नाहिं ॥ ३९३
च्यारि मास लौं कीनौ धंध । नहिं बिकाइ कपरा पग बंध ॥
बैनीदास खोबरा गोत । ताकौ ' दास नरोत्तम ' पोत ॥ ३९४

दोहा

सो बनारसीकौ हितू, और बदलिआ ' थान ' ।
रात दिवस कीड़ा करहिं, तीनां मित्र समान ॥ ३९५

चौपई

चढ़ि गाड़ीपर तीनौं डोल । पूजा हेतु गए भर कोल ।
कर पूजा फिरि जोरे हाथ । तीनौं जनें एक ही साथ ॥ ३९६
प्रतिमा आगैं भाखैं एहु । हमकौं नाथ लच्छिमी देहु ॥
जब लच्छिमी देहु तुम तात । तब फिरि करहिं तुम्हारी जात ॥
यहु कहिकै आए निज गेह । तीनौं मित्र भए इक देह ।
दिन अरु रात एकठे रहैं । आप आपनी बातैं कहैं ॥ ३९८

आयौ फागुन मास विख्यात । बालचंदकी चली वरात ॥
ताराचंद मोठिया गोत । नेमाको सुत भयौ उदोत ॥ ३९९
कही बनारसिसौं तिन बात । तू चलि मेरे साथ बरात ॥
तब अंतरधन मोती काढ़ि । मुद्रा तीस और द्वै बाढ़ि ॥ ४००
बेंचि खोंचिकै कीए दाम । कीनौ तब बरातिकौ साम ॥
चले वराति वनारसिदास । दूजा मित्र नरोत्तम पास ॥ ४०१
मुद्रा खरच भए सब तहां । है वरात फिरि आए इहां ॥
खैरावादी कपरा झारि । बेंच्यौ घटे रुपइया च्यारि ॥ ४०२
मूल-ब्याज दै फारिक भए । तव [सु] नरोत्तमके घर गए ॥
भोजन करकै दोऊ यार । बैठे[२] कियौ परस्पर प्यार ॥ ४०३

दोहा

कहै नरोत्तमदास तब, रहौ हमारे गेह ।
भाईसौं क्या भिन्नता, कपटीसौं क्या नेह ॥ ४०४

चौपई

तव बनारसी उत्तर भनै । तेरे घरसौं मोहि न बनै ।
कहै नरोत्तम मेरे भौन । तुमसौं बोलै ऐसा कौन ॥ ४०५
तव हठकरि राखे घरमाहिं । भाई कहै जुदाई नाहिं ॥
काहू दिवस नरोत्तमदास । ताराचंद मोठिए पास ॥ ४०६
बैठे तब उठि बोले साहु । तुम वनारसी पटनैं जाहु ॥
यह कहि रासि देइ तिस वार । टीका काढ़ि उतारे पार ॥ ४०७
आइ पार बूझे दिन भले । तीन पुरुष गाड़ी चढ़ि चले ॥
सेवक[३] कोउ न लीनौं गैल । तीनौं सिरीमाल नर छैल ॥ ४०८

दोहा

प्रथम नरोत्तमकौ ससुर, दुतिय नरोत्तमदास ।
तीजा पुरुष बनारसी, चौथा कोउ न पास ॥ ४०९

---

१ व दास । २ व बैठे बहुत कियौ तिनि प्यार । ३ ब सेवक एकु लियौ तिन गैल ।

चौपई

भाड़ा किया पिरोजाबाद । सहिजादपुरलौं मरजाद ॥
चले साहिजादपुर गए । रथसौं उतरि पयादे भए ॥ ४१०
रथका भाड़ा दिया चुकाइ । सांझि आइकै बसे सराइ ॥
आगै और न भाड़ा किया । साथ एक लीया बोझिया ॥ ४११
पहर एक[1] रजनी जब गई । तब तहां मकर चांदनी भई ॥
इनके मन आई यहु बात । कहहिं चलहु हूवा परभात ॥ ४१२
तीनौं जनें चले ततकाल । दै सिर बोझ बोझिया नाल ॥
चारौं भूलि परे पथमाहिं । दच्छिन दिसि जंगलमैं जाहिं ॥ ४१३
महा[2] बीड़ बन आयौ जहां । रोवन लग्यौ बोझिया तहां ॥
बोझ डारि भाग्यौ तिस ठौर । जहां न कोऊ मानस और ॥ ४१४
तब तीनिहु मिलि कियौ विचार । तीन भाग कीन्हा सब भार ॥
तीनि गांठि बांधी सम भाइ । लीनौ तीनिहु जनें उठाइ ॥ ४१५
कबहूं कांधे कबहूं सीस । यह[3] विपत्ति दीनी जगदीस ॥
अरध रात्र[4] जब भई वितीत । खिन रोवैं खिन गावैं गीत ॥ ४१६
चले चले आए तिस ठांउ । जहां बसै चोरनकौ गांउ ॥
बोला पुरुष एक तुम कौन । गए सूखि मुख पकरी मौन ॥ ४१७
इन्ह परमेसुरकी लौ धरी । वह था चोरनिका चौधरी ॥
तब बनारसी पढ़ा सिलोक । दी असीस उन दीनी धोक ॥ ४१८
कहै चौधरी आवहु पास । तुम्ह नारायण मैं तुम्ह दास ॥
आइ बसहु मेरी चौपारि । मोरे तुम्हरे बीच मुरारि ॥ ४१९
तब तीनौं नर आए तहां । दिया चौधरी थानक जहां ॥
तीनौं पुरुष भए भयभीत । हिरदैमाहिं कंप मुख पीत ॥ ४२०

दोहा

सूत काढ़ि डोरा बट्यौ, किए जनेऊ चारि ।
पहिरे तीन तिहूं जनें, राख्यौ एक उबारि ॥ ४२१

---

१ ब डेढ़ । ब महा विकट । ३ ब यहु विपता । ४ ब राति ।

माटी लीनी भूमिसौं, पानी लीनौं ताल ।
बिप्र बेष तीनौं बनैं, टीका कीनौ भाल ॥ ४२२

चौपई

पहर तीन लौं बैठे रहे । भयौ प्रात बादर पहपहे ॥
हय-आरूढ़ चौधरी-ईस । आयौ साथ और नर बीस ॥ ४२३
उनि कर जोरि नवायौ सीस । इन उठिकै दीनी आसीस ॥
कहै चौधरी पंडितराइ । आवहु मारग देहुं दिखाइ ॥ ४२४
पराधीन तीनौं उठि चले । मस्तक तिलक जनेऊ गले ॥
सिरपर तीनिहु लीनी पोट । तीन कोस जंगलकी ओट ॥ ४२५
गयौ चौधरी कियौ निबाह । आई फत्तेपुरकी राह ॥
कहै चौधरी इस मगमाहिं । जाहु हमहिं आग्या हम जाहिं ॥ ४२६
फत्तेपुर इन्ह रूखन तले । 'चिरं जीव' कहि तीनौं चले ॥
कोस दोइ[1] दीसै लखरांउ[2] । फिर द्वै कोस फतेपुर-गांउ ॥ ४२७
आइ फतेपुर लीनी ठौर । दोइ मजूर किए तहां और ॥
बहुरौं त्यागि फतेपुर-बास । गए छ कोस इलाहाबास ॥ ४२८
जाइ सराइ उतारा लिया । गंगाके तट भोजन किया ॥
बानारसी नगरमैं गयौ । खरगसेनसौं दरसन भयौ ॥ ४२९
दौरि[3] पुत्रनैं पकरे पाइ । पिता ताहि लीनौ उर लाइ ॥
पूछे पिता बात एकंत । कह्यौ बनारसि सब बिरतंत ॥ ४३०
सुतके बचन हिएमैं धरे । खाइ पछार भूमि गिरि परे ॥
मूर्छागति आई ततकाल । सुखमैं भयौ ऊचलाचाल ॥ ४३१
घरी चारि लौं बेसुध रहे । स्वासा जगी फेरि लहलहे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । डोली करी इलाहाबास ॥ ४३२
खरगसेन कीनैं असबार । बेग उतारे गंगापार ॥
तीनौं पुरुष पयादे पाइ । चले जौनपुर पहुंचे आइ ॥ ४३३
बानारसी नरोत्तम मित्त । चले बनारसि बनज निमित्त ॥
जाइ पास-जिन पूजा करी । ठाढ़े होइ विरति उच्चरी ॥ ४३४

---

१ ब दोय । २ ब लखगांव । ३ ब धाय ।

अडिल्ल छन्द

सांझसमै दुविहार, प्रात नौकारसहि ।
एक अधेली पुन्न, निरंतर नेम गहि ॥
नौकरवाली एक जाप, नित कीजिए ।
दोष लगै परभात तौ घीउ न लीजिए ॥ ४३५

दोहा

मारग वरत जथासकति, सव चौदसि उपवास ।
साखी कीन्हें पास जिन, राखी हरी पचास ॥ ४३६
दोइ वियाह[सु] सुरित द्वै, आगैं करनी और ।
परदारा संगति तजी, दुहूं मित्र इक ठौर ॥ ४३७
सोलह सै इकहत्तरे, सुकल पक्ष वैसाख ।
विरति धरी पूजा करी, मानहु पाए लाखु ॥ ४३८

चौपई

पूजा करि आए निज थान । कीनैं भोजन खाए पान ॥
करैं कछू ब्योपार बिसेख । खरगसेनकौ आयौ लेख ॥ ४३९
चीठीमाहिं वात विपरीत । बांचन लागे दोऊ मीत ॥
बानारसीदासकी वाल । खैराबाद हुती पिउसाल ॥ ४४०
ताके पुत्र भयौ तीसरो । पायौ सुख तिन दुख बीसरो ॥
सुत जनमैं दिन पंद्रह हुए । माता वालक दोऊ मुए ॥ ४४१
प्रथम बहूकी भगिनी एक । सो तिन भेजी कियौ विवेक ॥
नांऊ आइ नारिअर दियौ । सो हम भले मुहूरत लियौ ॥ ४४२
एक वार ए दोऊ कथा । संडासी लोहारकी जथा ॥
छिनमहिं अगिनि छिनक जलपात । त्यौं यह हरख शोककी बात ॥
यह चीठी वांची जव दुहूं । जुगल मित्र रोए करि उहूं ॥
बहुतै रुदन बनारसि कियौ । चुप करि रहे कठिन करि हियौ॥४४४

१ ब नापित तिलक आनकर कियौ ।

बहुरौं लागे अपनें काज । रोजगारकौ करन इलाज ।
लैंहिं दैंहिं थोरा अरु घना । चूंनी मानिक मोती पना ॥ ४४५
कबहूं एक जौनपुर जाहि । कबहूं रहै बनारसिमाहि ।
दोऊ सकृत रहैं इक ठौर । ठानहिं भिन्न भिन्न पग दौर ॥ ४४६
करहिं मसक्कति आलस नाहिं । पहर तीसरे रोटी खाहिं ॥
मास छ सात भए इस भांति । बहुरौं कछु पकरी उपसांति ॥४४७
घोरा दौरहि खाइ सबार । ऐसी दसा करी करतार ॥
चीनी किलिच खान उमराउ । तिन बुलाइ दीनौं सिरपाउ ॥ ४४८

दोहा

बेटा बड़ो किलीचकौ, च्यार हजारी मीर ।
नगर जौनपुरकौ धनी, दाता पंडित बीर ॥ ४४९
चीनी किलिच बनारसी, दोऊ मिले बिचित्र ।
वह यासौं किरिपा करै, यह जानै मैं मित्र ॥ ४५०
एहि बिधि बीते बहुत दिन, बीती दसा अनेक ।
बैरी पूरब जनमका, प्रगट भयौ नर एक ॥ ४५१
तिन अनेक बिधि दुख दियौ, कहौं कहा लौं सोइ ।
जैसी उनि इनसौं करी, तैसी करै न कोइ ॥ ४५२

चौपई

बानारसी नरोत्तमदास । दुहुंकौं लेन न देइ उसास ॥
दोऊ खेद खिन्न तिन किए । दुख भी दिए दाम भी लिए ॥ ४५३
मास दोइ बीते इस बीच । कहूं गयौ थौ चीनि किलीच ॥
आयौ गढ़मैं बासा जीति । फिरि बनारसीसेती प्रीति ॥ ४५४

दोहा

कबहुं नाममाला पढ़ै, छंद कोस स्रुतबोध ।
करै कृपा नित एकसी, कबहुं न होइ विरोध ॥ ४५५

चौपई

बानारसी कही किछु नाहिं । पै उन भय मानी मनमाहिं ॥
तब उन पंच बदे नर च्यारि । तिनि चुकाइ दीनी यह रारि ॥ ४५६

चूक्यौ झगरा भयौ अनंद । ज्यौं सुछंद खग छूटत फंद ॥
सोलह सै बहत्तरै बीच । भयौ कालबस चीनि किलीच ॥ ४५७
बानारसी नरोत्तमदास । पटनें गए बनजकी आस ॥
मास छ सात रहे उस देस । थोरा सौदा बहुत किलेस ॥ ४५८
फिर दोऊ आए निज ठांउ । बानारसी जौनपुर गांउ ॥
इहां बनज कीधौ अधिकाइ । गुपत बात सो कही न जाइ ॥ ४५९

दोहा

आउ बित्त निज गृहचरित, दान मान अपमान ।
ओखद मैथुन मंत्र निज, ए नव अकह कहान ॥ ४६०

चौपई

तातैं यह न कही विख्यात । नौ बातनमैं यह भी बात ॥
कीनी बात भली अरु वुरी । पटनें कासी जौनापुरी ॥ ४६१
रहे बरस द्वै तीनिहु ठौर । तब किछु भई औरकी और ॥
आगानूर नाम उंवराउ[2] । तिसकौं साहि दिया सिरपाउ ॥ ४६२
सो आवतौ सुन्यौ जब सोर । भागे लोग गए चहुं ओर ॥
तब ए दोऊ मित्र सुजान । आए नगर जौनपुर थान ॥ ४६३
घरके लोग कहूं छिप रहे । दोऊ यार उतर दिसि बहे ॥
दोऊ मित्र चले इक साथ । पांउ पयादे लाठी हाथ ॥ ४६४
आए नगर अजोध्यामाहिं । कीनी जात रहे तहां नाहिं ॥
चले चले रौनांही[3] गए । धर्मनाथके सेवक भए ॥ ४६५

दोहा

पूजा कीनी भक्तिसौं, रहे गुपत दिन सात ।
फिरि आए घरकी तरफ, सुनी पंथ यह बात ॥ ४६६
आगानूर बनारसी, और जौनपुर बीच ।
कियौ उदंगल बहुत नर, मारे करि अधमीच ॥ ४६७

---

१ स प्रतिमें यह पंक्ति नहीं है । २ उमराव । ३ ब सैनाई, स रोनाई ।

हक नाहक पकरे सकल, जड़िया कोठीवाल।
हुंडीवाल सराफ नर, अरु जौंहरी दलाल ॥ ४६८
काहू मारे कोररा, काहू बेड़ी पाइ।
काहू राखे भाखसी, सबकौं देइ सजाइ ॥ ४६९

चौपई

सुनी बात यह पंथिक पास। बानारसी नरोत्तमदास।
घर आवत हे दोऊ मीत। सुनि यह खबरि भए भयभीत ॥४७०
सुरहुरपुरकौ बहुरौं फिरे। चढ़ि घड़नाई सरिता तिरे।
जंगलमाहिं हुतो मोवार्से। जहां जाइ करि कीनौ बास ॥ ४७१
दिन चालीस रहे तिस ठौर। तब लौं भई औरकी और ॥
आगानूर गयौ आगरे। छोड़ि दिए प्रानी नागरे ॥ ४७२
नर द्वै चारि हुते बहुधनी। तिनकौं मारि दई अति घनी ॥
बांधि लै गयौ अपने साथ। हक नाहक जानै जिननाथ ॥ ४७३
इस अंतर ए दोऊ जनें। आए निरभय घर आपनें।
सब परिवार भयौ एकत्र। आयौ सबलसिंघको पत्र ॥ ४७४
सबलसिंघ मोठिआ मसंद। नेमीदास साहुकौ नंद ॥
लिख्यौ लेख तिन अपने हाथ। दोऊ साथी आवहु साथ ॥४७५

दोहा

अब पूरबमैं जिनि रहौ, आवहु मेरे पास।
यह चीठी साहू लिखी, पढ़ी बनारसिदास ॥ ४७६
और नरोत्तमके पिता, लिख दीनौ बिरतंत।
सो कागद आयौ गुपत, उनि बांच्यौ एकंत ॥ ४७७
बांचि पत्र बानारसी, के कर दीनौ आनि।
बांचहु ए चाचा लिखे, समाचार निज पानि ॥ ४७८
पढ़न लगे बानारसी, लिखी आठ दस पांति।
हेम खेम ताके तले, समाचार इस भांति ॥ ४७९

---

१ ब चढ़े घनाई। २ अ वास।

खरगसेन बानारसी, दोऊ दुष्ट विशेष ।
कपटरूप तुझसौं मिले, करि धूरतका भेष[1] ॥ ४८०
इनके मत जो चलहिगा, सो मांगहिगा भीख ।
तातैं तू हुसियार रहु, यहै हमारी सीख ॥ ४८१
समाचार बानारसी, बांचे सहज सुभाउ ।
तब सु नरोत्तम जोरि कर, पकरे दोऊ पाउ ॥ ४८२
कहै बनारसिदाससौं, तू बंधव तू तात ।
तू जानहि उसकी दसा, क्या मूरखकी बात ॥ ४८३
तब दोऊ खुसहाल होइ, मिले होइ इक चित्त ।
तिस दिनसौं बानारसी, नित्त सराहै मित्त ॥ ४८४
रीझि नरोत्तमदासकौं, कीनौ एक कवित्त ।
पढ़ै[2] रैन दिन भाटसौ, घर बजार जित कित्त ॥ ४८५

सवैया इकतीसा

नरोत्तमदासस्तुति—

नवपद ध्यान गुन गान भगवंतजीकौ,
करत सुजान दिढ़ग्यान जगि मानियै ॥
रोम रोम अभिराम धर्मलीन आठौ जाम,
रूप धन धाम काम-मूरत बखानियै ॥
तनकौ न अभिमान सात खेत देत दान,
मतिमान जाके जसकौ बितान तानियै ।
महिमानिधान प्रान प्रीतम बनारसीकौ,
चहुपद आदि अच्छरन्ह नाम जानियै ॥ ४८६

चौपई

बनारसी चिंतै मनमाहिं । ऐसो मित्त जगतमैं नाहिं ॥
इस ही बीच चलनका साज । दोऊ साझी[3] करहिं इलाज ॥ ४८७

---

१ ' पढ़न लगे ' से लेकर यहाँ तककी ये चार पंक्तियाँ अ प्रतिमें ४८१ के बाद लिखी हैं । २ अ पढ़ै रातदिन एकसौ । ३ अ साजी ।

खरगसेनजी जहमति परे । आइ असाधि बैद्नें करे ॥
बानारसी नरोत्तमदास । लाहनि कछू कराई तास ४८८
संबत तिहत्तरे बैसाख । सातिम सोमवार सित पाख ॥
तब साझेका लेखा किया । सब असबाब बांटिकै लिया ॥ ४८९

दोहा

दोइ रोजनामैं किए, रहे दुहूंके पास ।
चले नरोत्तम आगरै, रहे बनारसिदास ॥ ४९०
रहे बनारसि जौनपुर, निरखि तात बेहाल ।
जेठ अंधेरी पंचमी, दिन बितीत निसिकाल ॥ ४९१
खरगसेन पहुंचे सुरग, कहवति लोग विख्यात ।
कहां गए किस जोनिमैं, कहैं केवली बात ॥ ४९२
कियौ सोक बानारसी, दियौ नैन भरि रोइ ।
हियौ कठिन कीयौ सदा, जियौ न जगमैं कोइ ४९३

चौपई

मास एक बीत्यौ जब और । तब फिरि करी बनजकी दौर ॥
हुंडी लिखी रजत सै पंच । लिए, करन लागे पट संच ४९४
पट खरीदि कीनौं एकत्र । आयौ बहुरि साहुकौ पत्र ।
लिखा सिंघजी चीठीमांहिं । तुझ बिनु लेखा चूकै नाहिं ४९५
तातैं तू भी आउ सिताब । मैं बूझों सो देहि जवाब ॥
बानारसि [सुनि] यहु बिरतंत । तजि कपरा उठि चले तुरंत ॥ ४९६
बांभन एक नाम सिवराम । सौंप्यौ तांहि बस्त्रका काम ।
मास असाढ़मांहिं दिन भले । बानारसी आगरै चले ॥ ४९७

दोहा

एक तुरंगम नौ नफर, कीनें साथि बनाइ ।
नांउ घेसुआ गांउमैं, बसे प्रथम दिन आइ ॥ ४९८
ताही दिन आयौ तहां, और एक असबार ।
कोठीबाल महेसुरी, बसै आगरे बार ॥ ४९९

चौपई

षट सेवक इक साहिब सोइ । मथुराबासी बांभन दोइ ॥
नर उनीसकी जुरी जमाति । पूरा साथ मिला इस भांति ॥ ५००
कियौ कौल उतरहिं इकठौर । कोऊ कहूं न उतरै और ॥
चले प्रभात साथ करि गोल । खेलहिं हंसहिं करहिं कल्लोल ॥५०१

दोहा

गाम नगर उलंघि बहु, चलि आए तिस ठांउ ।
जहां घाटमपुरके निकट, बसै कोररौ गांउ ॥ ५०२
उतरे आइ सराइमैं, करि अहार विश्राम ।
मथुरावासी बिप्र द्वै, गए अहीरी-धाम ॥ ५०३
दुहुमैं बांभन एक उठि, गयौ हाटमैं जाइ ।
एक रुपैया काढ़ि तिनि, पैसा लिए भनाइ ॥ ५०४
आयौ भोजन साज लै, गयौ अहीरी-गेह ।
फिरि सराफ आयौ तहां, कहै रुपैया एह ॥ ५०५
गैरसाल है बदलि दै, कहै बिप्र मम नाहिं ।
तेरा तेरा यों कहत, भई कलह दुहुमाहिं ॥ ५०६
मथुराबासी बिप्रनैं, मार्‌यौ बहुत सराफ ।
बहुत लोग बिनती करैं, तऊ करै नहिं माफ ॥ ५०७
भाई एक सराफकौ, आइ गयौ इस बीच ।
मुख मीठी बातैं कहै, चित कपटी नर नीच ॥ ५०८
तिन बांभनके बस्त्र सब, टँकटोहे करि रीस ।
लखे रुपैया गांठिमैं, गिनि देखे पच्चीस ॥ ५०९
सबके आगे फिरि कहै, गैरसाल सब दर्वे ।
कोतवालपै जाइकै, निजरि गुदारी सर्व ॥ ५१०
बिप्र जुगल मिसकरि परे, मृतकरूप धरि मौन ।
बनिया सबनि दिखाइ ले, गयौ गांठि निज भौन ॥ ५११

---

१ अ और । २ ब कोरडा । ३ ब भुनाइ । ४ ब कह्यौ । ५ अ एकटोहे ।

खरे दाम घरमैं धरे, खोटे ल्यायौ जोरि ।
मिट्टी कोथलीमाहिं धरि, दीनी गांठि मरोरि ॥ ५१२
लेइ कोथली हाथमैं, कोतवालपै जाइ ।
खोटे दाम दिखाइकै, कही बात समुझाइ ॥ ५१३

चौपई

साहिबजी ठग आये घनें । फैले फिरहिं जाइ नहिं गनें ॥
संध्यासमै होहि इक ठौर । ह्वै असवार करहिं तब दौर ॥ ५१४
यह कहि बनिक निरालो भयौ । कोतवाल हाकिमपै गयौ ॥
कही बात हाकिमके कान । हाकिम साथि दियौ दीवान ॥ ५१५
कोतवाल दीवान समेत । सांझ समय आए ज्यौं प्रेत ॥
पुरजन लोक साथि सै चारि । जनु सराइमैं आई धारि ॥ ५१६
बैठे दोऊ खाट बिछाइ । बांभन दोऊ लिए बुलाइ ।
पूछै मुगल कहो तुम कौन । कहैं बिप्र मथुरामैं भौन ॥ ५१७
फिरि महेसरी लियौ बुलाय । कहां तू जाइ कहांसौं आइ ॥
तब सो कहे जौनपुर गांउ । कोठीवाल आगरें जांउ ॥ ५१८
फिरि बनारसी बोले बोल । मैं जोंहरी करौं मनिमोल ।
कोठी हुती बनारसिमाहिं । अब हम बहुरि आगरें जाहिं ॥ ५१९

दोहा

साझी नेमा साहुके, तखत जौनपुर भौन ।
ब्योपारी जगमैं प्रकट, ठगके लच्छन कौन ॥ ५२०

चौपई

कही बात जब बानारसी । तब वे कहन लगे पारसी ॥
एक कहै ए ठग तहकीक । एक कहै ब्योपारी ठीक ॥ ५२१
कोतवाल तब कहै पुकारि । बांधहु बेग करहु क्या रारि ॥
बोलै हाकिमकौ दीवान । अहमक कोतवाल नादान ॥ ५२२
रांति समै सूझै नहिं कोइ । चोर साहुकी निरत न होइ ॥
कछु जिन कहहि रातिकी राति । प्रात निकसि आवेगी जाति ॥५२३

---

१ ब रजनी समै न सूझै कोइ ।

कोतवाल तब कहै बखानि । तुम ढूंढ़हु अपनी पहिचानि ॥
कोररा, घाटमपुर अरु बरी । तीनि गांउकी सरियति करी ॥५२४
और गांउ हम मानति नाहिं । तुम यहु फिकिर करहु हम जाहिं ।
चले मुगल बादा बदि भोर । चौकी बैठाई चहुओर ॥ ५२५

दोहा

सिरीमाल बानारसी, अरु महेसरी-जाति ।
करहिं मंत्र दोऊ जनें[1], भई छमासी राति ॥ ५२६

चौपई

पहर राति जब पिछली रही । तब महेसरी ऐसी कही ॥
मेरा लिहुरा भाई हरी । नांउ सु तौ ब्याहा है बरी ॥ ५२७
हम आए थे इहां बरात । भली यादि आई यह बात ।
बानारसी कहै रे मूढ़ । ऐसी बात करी[2] क्यों गूढ़ ॥ ५२८

दोहा

तब महेसुरी यौं कहै, भयसौं भूली मोहि ।
अब मोकौं सुमिरन भई, तू निचिंत मन होहि ॥ ५२९

चौपई

तब बनारसी हरषित भयौ । कछूक सोच रह्यौ कछु गयौ ॥
कबहूं चितकी चिंता भगै । कबहूं बात झूठसी लगै ॥ ५३०
यों चिंतवत भयौ[3] परभात । आइ पियादे लागे घात ॥
सूली दै मजूरके सीस । कोतवाल भेजी उनईस ॥ ५३१
ते सराइमैं डारी आनि । प्रगट पयादा कहै बखानि ।
तुम उनीस प्रानी ठग लोग । ए उनीस सूली तुम जोग ॥ ५३२

दोहा

घरी एक बीते बहुरि, कोतवाल दीवान ।
आए पुरजन साथ सब, लागे करन निदान ॥ ५३३

---

१ ब पुरुष । २ ब कही । ३ ब भई ।

चौपई

तब बनारसी बोलै बानि । बरीमाहिं निकसी पहचानि ॥
तब दीवान कहै स्याबास । यह [तो] बात कही तुम रास ॥ ५३४
मेरे साथ चलो तुम बरी । जो कछु उहां होइ सो खरी ॥
महेसुरी हूओ असवार । अरु दीवान चला तिस लार ॥ ५३५
दोऊ जनें बरीमैं गए । समधी मिले साहु तब भए ॥
साहु साहुघर कियौ निवास । आए मुगल बनारसी पास ॥ ५३६
आइ कह्यौ तुम सांचे साहु । करो माफ यह भया गुनाहु ॥
तब बनारसी कहै सुभाउ । तुम साहिब हाकिम उमराउ ॥ ५३७
जो हम कर्म पुरातन कियौ । सो सब आइ उदै रस दियौ ॥
भावी अमिट हमारा मता । इसमैं क्या गुनाह क्या ख़ता ॥ ५३८
दोऊ मुगल गए निज धाम । तहां बनारसी कियौ मुकाम ।
दोऊ बांभन ठाढ़े भए । बोलहिं दाम हमारे गए ॥ ५३९

दोहा

पहर एक दिन जब चढ़्यौ, तब बनारसीदास ।
सेर छ सात फुलेल लै, गए मुगलके पास ॥ ५४०
हाकिमकौं दीवानकौं, कोतवालके गेह ।
जथाजोग सबकौं दियौ, कीनौ सबसौं नेह ॥ ५४१
तब बनारसी यौं कहै, आजु सराफ ठगाइ ।
गुनहगार कीजै उसे, दीजै दाम मंगाइ ॥ ५४२
कहै मुगल तुम बिन कहे, मैं कीन्हौ उस खोज ।
वह निज सबंही साथि लै, भागा उस ही रोज ॥ ५४३

सोरठा

मिला न किस ही ठौर, तुम निज डेरे जाइ करि ।
सिरिनी बांटहु और, इन दामनि [की] क्या चली ॥ ५४४

१ अ बस ही साखि ।

दोहा

तब बनारसी चिंतै आम । बिना जोर नहिं आवहिं दाम ।
इहां हमारा किछु न बसाय । तातैं बैठि रहे घरि जाय ॥ ५४५
यहु विचार करि कीनी दुवा । कही जु होना था सो हुवा ॥
आए अपने डेरेमाहिं । कही बिप्रसौं दमिका (?) नाहिं ॥ ५४६

दोहा

भोजन कीनौ सबनि मिलि, हूऔ संध्याकाल ।
आयौ साह महेसुरी, रहे राति खुसहाल ॥ ५४७

चौपई

फिरि प्रभात उठि मारग लगे । मनहु कालके मुखसौं भगे ॥
दूजे दिन मारगके बीच । सुनी नरोत्तम हितकी मीच ॥ ५४८

दोहा

चीठी बेनीदासकी, दीनी काहू आनि ।
देखत ही मुरछा भई, कहूं पांउ कहुं पानि ॥ ५४९
बहुत भांति बानारसी, कियौ पंथमैं सोग ।
समुझाएं मानै नहीं, घिरि आए सब लोग ॥ ५५०
लोभ मूल सब पापकौ, दुखकौ मूल सनेह ।
मूल अजीरन ब्याधिकौ, मरन मूल यहु देह ॥ ५५१
ज्यौं त्यौं कर समुझे बहुरि, चले होहि असवार ।
क्रम क्रम आए आगरें, निकट नदीके पार ॥ ५५२
तहां बिप्र दोऊ भए, आड़े मारग बीच ।
कहहिं हमारे दाम बिनु, भई हमारी मीच ॥ ५५३

चौपई

कही सुनी बहुतेरी बात । दोऊ बिप्र करैं अपघात ॥
तब बनारसी सोचि बिचारि । दीनै दामनि मेटी रारि ॥ ५५४

---

१ ब बांचत । २ ब बहु ।

दोहा

बारह दिए महेसुरी, तेरह दीनैं आप ।
बांभन गए असीस दै, भए बनिक निष्पाप ॥ ५५५
अपने अपने गेह सब, आए भए निचींत ।
रोएं बहुत बनारसी, हाइ मीत हा मीत ॥ ५५६
घरी चारि रोए बहुरि, लगे आपने काम ।
भोजन करि संध्या समय, गए साहुके धाम ॥ ५५७

चौपई

आवहिं जांहि साहुके भौन । लेखा कागद पूछइ कौन ॥
बैठे साहु विभौ-मदमाति । गावहिं गीत कलावत-पांति ॥५५८
धुरै पखावज बाजै तांति । सभा साहिजादेकी भांति ॥
दीजहि दान अखंडित नित्त । कवि बंदीजन पढ़हिं कवित्त ॥५५९
कही न जाइ साहिबी सोइ । देखत चकित होइ सब कोइ ॥
बानारसी कहै मनमांहिं । लेखा आइ बना किस पाहिं ॥ ५६०
सेवा करी मास द्वै चारि । कैसा बनज कहांकी रारि ॥
जब कहिए लेखेकी बात । साहु जवाब देहि परभात ५६१
मासी घरी छमासी जाम । दिन कैसा यहु जानै राम ॥
सूरज उंदै[3] अस्त है कहां । विषयी विषय-मगन है जहां ॥ ५६२

दोहा

इस विधि बीते बहुत दिन, एक दिवस इस राह ।
चाचा बैनीदासके, आए अंगासाह ॥ ५६३
अंगा चंगा आदमी, सज्जन और बिचित्र ।
सो बहनेऊ सिंघका, बानारसिका मित्र ॥ ५६४
तासौं कही बनारसी, निज लेखेकी बात ।
भैया, हम बहुतै दुखी, दुखी नरोत्तम तात ॥ ५६५

---

१ **ब** कीनो रुदन बनारसी । २ इस पंक्तिसे लेकर ५६७ तककी पंक्तियाँ **ब** प्रतिमें नहीं है । ३ **ब** ऊगै अथवै कहां ।

तातैं तुम्ह समुझाइकै, लेखा डारहु पारि।
अगली फारकती लिखौ, पिछिलो कागद फारि॥ ५६६

चौपई

तब तिस ही दिन अंगनदास। आए सबलसिंघके पास॥
लेखा कागद लिए मंगाइ। साझा पाता दिया चुकाइ॥ ५६७
फारकती लिखि दीनी दोइ। बहुरौ सुखुन करै नहिं कोइ॥
मता लिखाइ दुहूपइ लिया। कागद हाथ दुहूका दिया॥ ५६८
न्यारे न्यारे दोऊ भए। आप आपने घरकौं गए॥
सोलह सै तिहत्तरें साल। अगहन कृष्णपक्ष हिमकाल॥ ५६९
लिया बनारसि डेरा जुदा। आया पुन्य कालका उदा॥
जो कपरा था बांभन हाथ। सो उनि भेज्या आछे साथ॥ ५७०
आई जौनपुरीकी गाठि। धरि लीनी लेखेमों साठि॥
नित उठि प्रात नखासे जाहिं। बेचि मिलावहिं पूंजीमाहिं॥ ५७१
इस ही समय ईति बिस्तरी। परी आगरें पहिली मरी॥
जहां तहां सब भागे लोग। परगट भया गांठिका रोग॥ ५७२
निकसै गांठि मरै छिनमाहिं। काहूकी बसाइ किछु नाहिं॥
चूहे मरहिं बैद मर जाहिं। भयसों लोग अंन नहिं खाहिं॥ ५७३
नगर निकट बांभनका गांउ। सुखकारी अजीजपुर नांउ॥
तहां गये वानारसिदास। डेरा लिया साहके पास॥ ५७४
रहहिं अकेले डेरेमाहिं। गर्भित वात कहनकी नाहिं॥
कुमति एक उपजी तिस थान। पूरवकर्मउदैपरवान॥ ५७५
मरी निवर्त्त भई बिधि जोग। तब घर घर आए सब लोग।
आए दिन केतिक इक भए। बानारसी अमरसर गए॥ ५७६
उहां निहालचंदकौ ब्याह। भयौ बहुरि फिरि पकरी राह।
आए नगर आगरेमाहिं। सबलसिंघके आवहिं जाहिं॥ ५७७

---

१ ब सुपन। २ अ तहि। ३ ब घर उठि।

दोहा

हुती जु माता जौनपुर, सो आई सुत पास ।
खैराबाद बियाहकौं, चले बनारसिदास ॥ ५७८

चौपई

करि बियाह आए घरमाहिं । मनसा भई जातकौं जाहिं ॥
बरधमान कुंअरजी दलाल[1] । चल्यौ संघ इक तिन्हके नाल ॥ ५७९
अहिछत्ता-हथिनापुर-जात । चले बनारसि उठि परभात ॥
माता और भारजा संग । रथ बैठे धरि भाउ अभंग ॥ ५८०
पचहत्तरे पोह सुभ घरी । अहिछत्तेकी पूजा करी ॥
फिरि आए हथिनापुर जहां । सांति कुंथु अर पूजे तहां ॥ ५८१

दोहा

सांति-कुंथु-अरनाथकौ, कीनौं एक कवित्त ।
ताकौं पढ़ै बनारसी, भाव भगतिसौं नित्त ॥ ५८२

छप्पै

श्री विससेन नरेस, सूर नृप राय सुदंसन[2] ।
अचिरा सिरिआ देवि, करहिं जिस देव प्रसंसन ॥
तसु नंदन सारंग, छाग नंदावत लंछन ।
चालिस पैंतिस तीस, चाप काया छवि कंचन ॥
सुखरासि बनारसिदास भनि, निरखत मन आनंदई ॥
हथिनापुर, गजपुर, नागपुर, सांति कुंथु अर बंदई ॥ ५८३

चौपई

करी जात मन भयौ उछाह । फिर्यौ संघ दिल्लीकी राह ॥
आई मेरठि पंथ विचाल । तहां बनारसीकी न्हनसाल ॥ ५८४
उतरा संघ कोटके तले । तब कुटुंब जात्रा करि चले ॥
चले चले आए भर कोल । पूजा करी कियौ थो कोल ॥ ५८५

---

१ ब दयाल । २ ब सुनंदन ।

नगर आगरे पहुंचे आइ । सब निज निज घर बैठे जाइ ॥
बानारसी गयौ पौसोल । सुनी जती श्रावककी चाल ॥ ५८६
बारह व्रतके किए कवित्त । अंगीकार किए धरि चित्त ॥
चौदह नेम संभाले नित्त । लागे दोष करै प्राछित्त ॥ ५८७
नित संध्या पड़िकोंना करै । दिन दिन व्रत विशेषता धरै ॥
गहै जैन मिथ्यामत वमै । पुत्र एक हूवा इस समै ॥ ५८८
छिहत्तरे संबत आसाढ़ । जनम्यौ पुत्र धरमरुचि बाढ़ ॥
वर्ष एक बीतौ जब और । माता मरन भयौ तिस ठौर ॥ ५८९
सतहत्तरे समय मा मरी । जथासकति कछु लाहनि करी ॥
उनासिए सुत अरु तिय मुई । तीजी और सगाई हुई ॥ ५९०
बेगासाहु कूकड़ी गोत । खैराबाद तीसरी पोत ।
समय अस्सिए ब्याहन गए । आए घर गृहस्थ फिरि भए ॥५९१
तब तहां मिले अरथमल ढोर[2] । करैं अध्यातम बातैं जोर ।
तिनि बनारसीसौं हित कियौ । समैसार नाटक लिखि दियौ ॥
राजमल्लनैं टीका करी । सो पोथी तिनि आगैं धरी ॥
कहै बनारसिसौं तू बांचु । तेरे मन आवेगा सांचु ॥ ५९३
तब बनारसि बांचै नित्त । भाषा अरथ बिचारै चित्त ॥
पावै नहीं अध्यातम पेच । मानै बाहिज किरिआ हेच ॥ ५९४

दोहा

करनीकौ रस मिटि गयौ, भयौ न आतमस्वाद ।
भई बनारसिकी दसा, जथा ऊंटकौ पाद ॥ ५९५

चौपई

बहुरौं चमत्कार चित भयौ । कछु बैराग भाव परिनयौ ॥
'ग्यान-पचीसी' कीनी सार । 'ध्यान-बतीसी' ध्यान उदार ॥ ५९६
कीनैं 'अध्यातमके गीत' । बहुत कथन विवहार-अतीत ॥
'सिवमंदिर' इत्यादिक और । कबित अनेक किए तिस ठौर ॥ ५९७

---

१ ब प्यौसाल । २ अ ठोर ।

जप तप सामायिक पड़िकौन । सब करनी करि डारी बौन ।
हरी-बिरति लीनी थी जोइ । सोऊ मिटी न परमिति कोइ ॥ ५९८
ऐसी दसा भई एकंत । कहौं कहां लौं सो बिरतंत ॥
बिनु आचार भई मति नीच । सांगानेर चले इस बीच ॥ ५९९
बानारसी बराती भए । तिपुरदासकौं ब्याहन गए ॥
ब्याहि ताहि आए घरमाहिं । देवचढ़ाया नेवज खाहिं ॥ ६००
कुमती चारि मिले मन मेल । खेला पैजार[1]हुका खेल ॥
सिरकी पाग लैहिं सब छीन । एक एककौं मारहिं तीन ॥ ६०१

दोहा

चन्द्रभान बानारसी, उदैकरन अरु थान ।
चारौं खेलहिं खेल फिरि, करहिं अध्यातम ग्यान ॥ ६०२
नगन हौंहिं चारौं जनें, फिरहिं कोठरीमाहिं ।
कहहिं भए मुनिराज हम, कछू परिग्रह नाहिं ॥ ६०३
गनि गनि मारहिं हाथसौं, मुखसौं करहिं पुकार ।
जो गुमान[2] हम करै[3] गहे, ताके सिर पैजार ॥ ६०४
गीत सुनैं बातैं सुनहिं, ताकी बिंग बनाइ ।
कहैं अध्यातममैं अरथ, रहैं मृषा लौ लाइ ॥ ६०५

चौपई

पूरब कर्म[4] उदै संजोग । आयौ उदय असाता भोग ।
तातैं कुमत भई उतपात । कोऊ कहहि न मानहिं बात ॥ ६०६
जब लौं रही कर्मवासना । तब लौं कौन बिथा नासना ॥
असुभ उँदय जब पूरा भया । सहजहि खेल छूटि तब गया ॥ ६०७
कहहिं लोग श्रावक अरु जती । बानारसी खोसँरामती[5] ॥
तीन पुरुषकी चलै न बात । यहु पंडित तातैं विख्यात ॥ ६०८

---

१ ब पादत्राण । २ अ गुनमान । ३ ब करह त । ४ ब करम । ५ ब पुष्करामती (?) ।

निंदा थुति जैसी जिस होइ । तैसी तासु कहैं सब कोइ ॥
पुरजन बिना कहैं नहि रहैं । जैसी देखैं तैसी कहैं ॥ ६०९

दोहा

सुनी कहहिं देखी कहहिं, कलपिन कहैं बनाइ ।
दुराराधि ए जगत जन, इन्हसौं कछु न बसाइ ॥ ६१०

चौपई

जब यह धूमधाम मिटि गई । तब कछु और अवस्था भई ॥
जिनप्रतिमा निंदहिं मनमाहिं । मुखसौं कहहिं जो कहनी नाहिं ६११
करहिं बरत गुरु सनमुख जाइ । फिरि भोनहिं अपने घर आइ ॥
खाहिं रात दिन पसुकी भांति । रहे एकंत मृषामदमांति ॥ ६१२

दोहा

यहु बनारसीकी दसा, भई दिनहु दिन गाढ़ ।
तब संवत चौरासिया, आयौ मास असाढ़ ॥ ६१३
भयौ तीसरी नारिकै, प्रथम पुत्र अवतार ।
दिवस कैकु रह उठि गयौ, अलप आयु संसार ॥ ६१४

चौपई

छत्रपति जहांगीर दिल्लीस । कीनौ राज बरस बाईस ॥
कासमीरके मारग बीच । आवत हुई अचानक मीच ॥ ६१५
मासि चारि अंतर परवान । आयौ साहिजिहां सुलतान ।
बैठ्यौ तखत छत्र सिर तानि । चहू चक्कमैं फेरी आन ॥ ६१६

दोहा

सोरह सै चौरासिए, तखत आगरे थान ।
बैठ्यौ नाम धराय प्रभु, साहिब साहि किरान ॥ ६१७
फिरि संवत पच्यासिए, बहुरि दूसरी बार ।
भयौ बनारसिके सदन, दुतिय पुत्र अवतार ॥ ६१८

---

१ अ तानहि । २ ब आव ।

चौपई

बरस एक द्वै अंतर काल । कथा-शेष हूऔ सो बाल ।
अल्प आयु ह्वै आवहिं जाहिं । फिर सत्यासिए संवतमाहिं ॥ ६१९
बानारसीदास आवास । त्रितिय पुत्र हूऔ परगास ॥
उनासिए पुत्री अवतरी । तिन आऊपा पूरी करी ॥ ६२०
सब सुत सुता मरनपद गहा । एक पुत्र कोऊ दिन रहा ॥
सो भी अलप आउ जानिए । ताइं मृतकरूप मानिए ॥ ६२१
क्रम क्रम बीत्यौ इक्यानवा । आयौ सोलहसै बानवा ॥
तब ताईं धरि पहिली दसा । बानारसी रह्यौ इकरसा ॥ ६२२

दोहा

आदि असिसआ बानवा, अंत बीचकी बात ।
कछु औरों बाकी रही, सो अब कहौं विख्यात ॥ ६२३
चले बरात बनारसी, गए चौडसूं गाम ।
वच्छा-सुतकौं ब्याह करि, फिरि आए निज ठाम ॥ ६२४
अरु इस बीचि कबीसुरी, कीनी बहुरि अनेक ।
नाम ' सूक्तिमुक्तावली, ' किए कबित सौ एक ॥ ६२५
' अध्यातम बत्तीसिका, ' ' पयडी ' ' फाग धमाल ' ।
कीनी ' सिन्धुचतुर्दशी, ' फूटक कबित रसाल ॥ ६२६
' शिवपच्चीसी भावना, ' ' सहस अठोत्तर नाम । '
' करमछतीसी ' ' झूलना, ' अंतर रावन राम ॥ ६२७
बरनी आंखें दोइ बिधि, करी ' बचनिका ' दोइ ।
' अष्टक ' ' गीत ' बहुत किए, कहौं कहा लौं सोइ ॥ ६२८
सोलह सै बानवै लौं, कियौ नियत-रस-पान ।
पै कबीसुरी सब भई, स्यादवाद-परवान ॥ ६२९
अनायास इस ही समय, नगर आगरे थान ।
रूपचंद पंडित गुनी, आयौ आगम-जान ॥ ६३०

---

१ ब चाटसूं । २ ब बहुत । ३ स ब कूटक ।

चौपई

तिहुंना[1] साहु देहरा किया। तहां आइ तिन डेरा लिया॥
सब अध्यातमी कियौ बिचार। ग्रंथ बंचायौ गोमटसार ॥ ६३१
तामैं गुनथानक परवान। कह्यौ ज्ञान अरु क्रिया-बिधान।
जो जिय जिस गुन-थानक होइ। तैसी क्रिया करै सब कोइ॥६३२
भिन्न भिन्न बिबरन बिस्तार। अंतर नियेंत बहुरि बिवहार॥
सबकी कथा सबै बिधि कही। सुनि कै संसै कछू न रही॥ ६३३
तब बनारसी औरै भयौ। स्यादवाद परिनति परिनयौ॥
पांड़े रूपचंद गुरु पास। सुन्यौ ग्रंथ मन भयौ हुलास॥ ६३४
फिरि तिस समै बरस द्वै बीच। रूपचंदकौं आई मीच॥
सुनि सुनि रूपचंदके बैन। बानारसी भयौ दिढ़ जैन॥ ६३५

दोहा

तब फिर और कबीसुरी, करी अध्यातममाहिं।
यह वह कथनी एकसी, कहुं विरुद्ध कछु नाहिं॥ ४३६
हृदैमाहिं कछु कालिमा, हुती सरदहन बीच।
सोउ मिटी समता भई, रही न ऊंच न नीच॥ ६३७

चौपई

अंथ[2] सम्यक दरसन उनमान। प्रगट रूप जानै भगवान॥
सोलह सै तिरानवै वर्ष। समैसार नाटक धरि हर्ष॥ ६३८
भाषा कवित भानके सीस। कबित सातसै सत्ताईस॥
अनेकांत परनति परिनयौ। संबत आइ छानवा भयौ॥ ६३९
तब बनारसीके घर बीच। त्रितियँ[4] पुत्रकौं आई मीच॥
बानारसी बहुत दुख कियौ। भयौ सोकसौं व्याकुल हियौ॥ ६४०
जगमैं मोह महा बलवान। करै एक सम जान अजान॥
बरस दोइ बीते इस भांति। तऊ न मोह होइ उपसांति॥ ६४१

---

१ अ तिहिना साह। २ ब निहत। ३ ब अब। ४ ब चरम।

दोहा

केही पचानव बरस लौं, बानारसिकी बात ।
तीन बियाहीं भारजा, सुता दोइ सुत सात ॥ ६४२
नौ बालक हूए मुए, रहे नारि नर दोइ ।
ज्यौं तरवर पतझार ह्वै, रहैं ठूंठसे होइ ॥ ६४३
तत्त्वदृष्टि जो देखिए, सत्यारथकी भांति ।
ज्यौं जाकौ परिगह घटै, त्यौं ताकौ उपसांति ॥ ६४४
संसारी जानै नहीं, सत्यारथकी बात ।
परिगहसौं मानइ बिभौ, परिगह बिन उतपात ॥ ६४५
अब बनारसीके कहौं, बरतमान गुन दोष ।
विद्यमान पुर आगरें, सुखसौं रहै सजोष ॥ ६४६

चौपई

भाषाकबित अध्यातममाहिं । पंडित और दूसरो नाहिं ॥
छमावंत संतोषी भला । भली कबित पढ़िवेकी कला ॥ ६४७
पढ़ै संसकृत प्राकृत सुद्ध । बिविध देस भाषा प्रतिबुद्ध ॥
जानै सबद अरथकौ भेद । ठानै नहीं जगतकौ खेद ॥ ६४८
मिठबोला सबहीसौं प्रीति । जैन धरमकी दिढ़ परतीति ।
सहनसील नहिं कहै कुबोल । सुथिरचित्त नहिं डावांडोल ॥६४९
कहै सबनिसौं हित उपदेस । हृदै सुष्ट न दुष्टता लेस ॥
पररमनीकौ त्यागी सोइ । कुबिसन और न ठानै कोइ ॥ ६५०
हृदैय[3] सुद्ध समकितकी टेक । इत्यादिक गुन और अनेक ॥
अलप जघन्य कहे गुन जोइ । नहिं उतकिष्ट न निर्मल कोइ ॥ ६५१
कहे बनारसिके[4] गुन जथा । दोषकथा अब बरनौं तथा ।

अथ दोषकथन

क्रोध मान माया जलरेख । पै लछमीकौ मोह[5] विशेख ॥ ६५२

---

१ यह पद्य अ प्रतिमे नहीं है । २ ब बात । ३ ब हिये । ४ अ बनारसि ल यथा । ५ ब लोभ ।

पोतै हास कर्मदो उदा । घरसौं हुआ न चाहै जुदा ॥
करै न जप तप संजम रीत । नहीं दान-पूजासौं प्रीत ॥ ६५३
थोरे लाभ हरख बहु धरै । अलप हानि बहु चिंता करै ॥
मुख अवद्य भाषत न लजाइ । सीखइ भंडकला पन लाइ ॥ ६५४
भाखै अकथकथा बिरतंत । ठानै नृत्य पाइ एकंत ॥
अनदेखी अनसुनी बनाइ । कुकथा कहै सभामैं आइ ॥ ६५५
होइ निमग्न हास रस पाइ । मृषावाद बिनु रह्या न जाइ ॥
अकस्मात भय व्यापै घनी । ऐसी दसा आइ करि बनी ॥ ६५६
कबहूं दोष कबहु गुन कोइ । जाकौ उदौ सो परगट होइ ॥
यह बनारसी जीकी बात । कही थूल जो हुती विख्यात ॥ ६५७
और जो सूछम दसा अनंत । ताकी गति जानै भगवंत ।
जे जे बातैं सुमिरन भईं । तेते वचनरूप परनईं ॥ ६५८
जे बूझी प्रमाद इहि माहिं । ते काहू पै कही न जाइ ॥
अलप थूल भी कहै न कोइ । भाषै सो जु केवली होइ ॥ ६५९

दोहा

एक जीवकी एक दिन, दसा होइ जेतीक ।
सो कहि न सकै केवली, जानै जद्यपि ठीक॥ ६६०
मनपरजैधर अवधिधर, करहिं अलप चिंतौन ।
हमसे कीट पतंगकी, बात चलावै कौन ॥ ६६१
तातैं कहत बनारसी, जीकी दसा रसाल [अपार ?]
कछू थूलमैं थूलसी, कही बहिर बिवहार ॥ ६६२
बरस पंच पंचास लौं, भाख्यौ निज बिरतत ।
आगै भावी जो कथा, सो जानै भगवंत ॥ ६६३
बरस पचावन ए कहे, बरस पचावन और ।
बाकी मानुष आउमैं, यह उतकिष्टी दौर ॥ ६६४

---

१ ब का ।

बरस एक सौ दस अधिक, परमित मानुष आउ ।
सोलहसै अट्ठानवै, समै बीच यह भाउ ॥ ६६५

तीन भांतिके मनुज सब, मनुजलोकके बीच ।
बरतहिं तीनौं कालमैं, उत्तम, मध्यम, नीच ॥ ६६६

अथ उत्तम नर यथा—

जे परदोष छिपाइकै, परगुन कहैं विशेष ।
गुन तजि निज दूषन गहैं, ते नर उत्तम भेष ॥ ६६७

अथ मध्यम नर यथा—

जे भाखहिं पर दोष-गुन, अरु गुन-दोष सुकीउ ।
कहहिं सहज ते जगतमैं, हमसे मध्यम जीउ ॥ ६६८

अथ अधम नर यथा—

जे परदोष कहैं सदा, गुन गोपहिं उर बीच ।
दोस लोपि निज गुन कहैं, ते जगमैं नर नीच ६६९
सोलह सै अंट्ठानवै, संबत अगहनमास ।
सोमवार तिथि पंचमी, सुकल पक्ष परगास ६७०
नगर आगरेमैं बस, जैनधर्म श्रीमाल ।
बानारसी बिहोलिआ, अध्यातमी रसाल ॥ ६७१

चौपई

ताके मन आई यहु बात । अपनौ चरित कहौं बिख्यात ॥
तब तिनि बरस पंच पंचास । परमिति दसा कही मुख भास॥६७२
आगै जु कछु होइगी और । तैसी समुझैंगे तिस ठौर ।
बरतमान नेर-आउ बखान । बरस एक सौ दस परवान ॥ ६७३

१ अ अट्ठावना । २ अ वर ।

दोहा

तातैं अरध कथान यहु, बानारसी चरित्र।
दुष्ट जीव सुनि हंसहिंगे, कहहिं सुनहिंगे मित्र॥ ६७४
सब दोहा अरु चौपई, छसै पिचत्तरि मान।
कहहिं सुनहिं बांचहिं पढ़हिं, तिन सबकौ कल्यान॥ ६७५

इतिश्री अर्द्धकथानक अधिकारः संपूर्णः शुभमस्तु

संवत् १८४९ श्रावणमासे कृष्णपक्षे चतुर्दशी १४ भौमवासरे लिखितं भगवानदास भिंडमैं। राम।

---

१ अ तिहत्तर जान। २ **ब** इतिश्री बनारसी अवस्था संपूरणम्। मिती आसाढ़ कृष्ण ७ संवत् १९०२। श्री। **स** इती बानारसी अवस्था संपूरणं।

परिशिष्ट

१—शब्द-कोष

पद्य नं० १ अपनपौ=आत्मत्व, अपनेको। **पास-सुपास**=पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ तीर्थंकर। **सिफथ**=सिफ़त (अरबी) विशेषता, गुण।

३ जिन पहिरी जिन-जनम-पुरि-नाम मुद्रिका=पार्श्वनाथ जिनकी जन्म-नगरी बनारसीके नामकी अँगूठी जिसने धारण की, अर्थात् जिसका नाम बनारसी है वह।

९ **अघभूत**=पापमूलक, हिंसाके, मार-काटके काम।

१० **रखपाल**=रक्षक, ठाकुर, राजा।

१३ **हिंदुगी**=हिन्दी।

१४ **मोदी**=राजा या नवाबोंकी ओरसे उन्हें भोजनादि तमाम आवश्यक सामग्री जुटानेका काम जिन्हें दिया जाता था वे मोदी कहलाते थे।

१५ **उचापति**=उधार माल देनेका काम। (यह शब्द इसी अर्थमें सागर जिलेमें अब भी प्रचलित है।)

१९ **घनदल**=बादलोंका समूह। **तए**=तपे, तचे, झुलस गये।

२० **असराल**=असरार, लगातार, बहुत।

२२ **खालसै**=ख़ालसा (अरबी), किसी जमीन या घरपर राजाद्वारा अधिकार किया जाना।

२५ **गोवै**=गोमती, गोवई, गोवै नदी।

२७ **कुतबा**=खुतबा पढ़ना, सर्व साधारणको सूचना देनेके लिए सिंहासनासीन होनेकी घोषणा करना।

२९ **सीसगर**=शीशागर, काँचकी चीजें बनानेवाले, कचेरे। **रंगवाल**=रंगसाज़, रंगरेज़। **बाढ़ई**, बढ़ई, सुतार। **संगतरास**=संगतराश (फा०) पत्थर काट कर चीजें बनानेवाला। **कंदोई**=कलाकन्द बनानेवाला, हलवाई। **कहार**=स्कन्धभार, पनिहारा। **काछी**=तरकारी भाजी बोने बोचनेवाला। **कलाल**=शराब बनाने बेचनेवाला। **कुलाल**=कुम्हार, मिट्टीके वर्तन बनानेवाला। **कुन्दीगर**=कुन्दी करनेवाला, धुले या रंगे हुए कपड़ोंकी तह करके,

उनकी सिकुड़न और रुखाई दूर करने तथा तह जमानेके लिए लकड़ीकी मोगरीसे पीटनेकी क्रिया, एक तरहकी इस्तरी। **कागदी**=काग़ज़ी, काग़ज़ बनाने-बेचनेवाला। **पटबुनिया**=पट या वस्त्र बुननेवाला। **चितेरा**=चित्रकार। **बिधेरा**=बहेलिया, बधिक। **बारी**=पत्तलें दौनें बनानेवाला। **लखेरा**=लाखकी चूड़ियाँ बनानेवाला। **ठठेरा**=ताँबे, पीतल, काँसेके वर्तन बनानेवाला, तमेरा। **राज**=थवई (स्थपति), ईंट पत्थर आदिसे घर बनानेवाला। **पटुवा**=पटवा, रेशम या सूतमें गहने गूँथनेवाला, पटहार। **छप्परबंध**=मकानोंके छप्पर छानेवाला। **भारभुनिया**=भड़भूँजा, भाड़में चने आदि भूँजने या सेंकनेवाला। **सिकलीगर**=हथियारोंपर बाढ़ या सान चढ़ानेवाला। **हवाईगर**=हवाईगीर, आतिशबाजी बनानेवाला। **पौन, पांनि या पउनिया**=विविध पेशेवाली शूद्र जातियाँ।

३० **चंग**=सुन्दर, शोभायुक्त। हि० चंगा, मराठी चांगला।

३१ **मंडई**=मंडी, थोक बिक्रीके बाज़ार।

३४-३५ **आन**=आज्ञा, मर्यादा, प्रतिष्ठा, शासन।

४५ **ननसाल**=नहनसाल, नानाका घर, ममेरा।

४६ **सोवण्ण**=सुवर्ण, सोना।

५० **पोतदार**=पोत अर्थात् मालगुज़ारी, लगान। पोतादार (फा०), लगानका रुपया रखनेवाला खजांची।

५१ **बिसास**=विश्वास, भरोसा। **फारकती**=फारख़ती, चुकती, बेबाक़ी। **पोसह**=प्रोषध, अष्टमी चतुर्दशी आदि पर्व तिथियोंमें करने योग्य जैन गृहस्थका एक व्रत। आहार आदिके त्यागपूर्वक किया हुआ अनुष्ठान। **पडिकोंना**=प्रतिक्रमण, किये हुए पापोंका अनुताप करके उससे निवृत्त होना और नई भूल न हो इसके लिए सावधान रहना। जैन साधु और गृहस्थोंकी एक आवश्यक क्रिया जो सुबह शाम की जाती है। **नोतन**=नौतन नूतन, नया।

५६ **कारकुन**=(फा०) कारिंदा, क्लर्क।

५७ **समेतसिखरिकी जात**=सम्मेद शिखर अर्थात् हजारीबाग जिलेका पार्श्वनाथ हिल, जैनोंका प्रधान तीर्थस्थान। उसकी जात या यात्रा।

५९ **पटभौन**=वस्त्रका मकान, तम्बू, रावटी।

६० **चौबिहार**=खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय इन चार प्रकारके आहारोंका त्याग। **पंच नवकार**=पंच नमस्कार, जैनोंका प्रसिद्ध मंत्र, जिसमें अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुसमूहको नमस्कार किया जाता है।–णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

६१–६२ **थिति**=स्थिति, आयु, जन्म।

६२ **पाइक**=पायक, पैदल सिपाही, नौकर। **अगयौ**=ग्रहण किया, लिया, सँभाला, सहा। **हमाल**=हम्माल (अरबी), मजदूर, कुली। **पोट**=पोटली, गठरी।

६४ **ऊबट पंथ**=अटपटा, ऊँचा नीचा, ऊबड़ खाबड़ रास्ता।

६७-१०९ **पीतिआ**=पितृव्य, पिताका भाई, ताऊ, (गुजराती) पितराई।

६८ **सीर**=साझेमें।

७० **टेरि** (?)=श्रीमालोंका एक **गोत्र** ढोर है। वही भूलसे टेरि लिखा गया है। पद्य ५९५ में भी इसी गोत्रवाले अरथमलजीका उल्लेख है।

७५ **सिवमती**=शैव, शिवका भक्त।

७९-१३६-१३७ **अऊत**=सतीका नाम।

८७ **पुजारा**=पुजारी, पुजेरा, पूजा करनेवाला।

८९ **साधै पौन**=पवनका साधना, नाकके आगे उँगली करके श्वास खींचना।

८९ **घटी**=घड़ी, २४ मिनट।

९० **सुपिनंतर**=स्वप्नान्तर, स्वप्नमें। **जच्छ**=यक्ष। प्रत्येक जैन तीर्थंकरके सेवक कुछ यक्ष होते हैं, उनमेंसे पार्श्वनाथका यक्ष। एक जातिका देव।

९१ **पास-जनमकौ गाँव**=पार्श्वनाथ तीर्थंकरका जन्म-ग्राम, वाराणसी या बनारसी।

९८ **लेखा**=गणित, हिसाब।

१०७ **आगौन**=आगमन, आना।

१०९, १३१, ४४३, ५७९ **नाल**=साथमें, संगमें।

११० **बीतिक**=बीतक, घटना, बीती हुई बात।

११३ **कोरडे**=कोड़े, चाबुक।

११४ **मतौ**=सलाह ।

११८ **भोग अंतराई**=भोगान्तराय नामका कर्म जिसके उदयसे प्राणी प्राप्त भोग भी नहीं भोग सकता ।

११९-१२० **माहुर**=माथुर, माहौर, वैश्योंकी एक जाति ।

१२३ **माट**=मिट्टीके घड़े, मटका, माटला (गुजराती) ।

२९२ **सोरि सौरि**=सौड़, रिजाई । **तुलाई**=तूल या रुईसे भरी ।

१३० **आथवत**=अस्तमित, अस्त होते हुए । **राती**=रक्त, लाल ।

१३३-१४५ **दानि** और **दानि शाह**=शाहज़ादा दानियाल । **वसुधा-पुरहूत**=पृथ्वीका इन्द्र, बादशाह अकबर ।

१४५ **रोक**=रोकड़ा, नक़द, रोख (मराठी)

१३५ **तमाइ**=अरबी शब्द ' तमअ ' से बना । लोभ, परवा ।

१३६ **निकुती**=नुकती, बेसनकी बारीक बुंदियाँ, एक मिठाई ।

१५१ **जेम**=जिससे, जिसतरह । गुजराती ' जेम ' के समान ।

१५३ **रूधी**=रुद्ध कर दीं, बन्द कर दीं ।

१५४ **नाल**=तोप ।

१५४-४३१ **ऊचलाचाल**=भूचाल, भूकम्प ।

१५७-२१५ **धार, धारि**=धाड़, डाकुओंका दल ।

१५९ **अरदास**=अर्ज़दाश्त (फारसी), प्रार्थना, विनय ।

१६५ **गुनह**=गुनाह या अपराध । **बकसाइ**=फारसी बख्शसे बना । माफ कराके ।

१६९ **नाममाला**=महाकवि धनंजयकृतका एक छोटा-सा प्राचीन संस्कृत कोश । **अनेकारथ**=इसी कोशका अन्तिम अंश । **लघु कोक**=छोटा कोक या कामशास्त्र, कोक्काक पंडित कृत ।

१७१ **दरदवन्द**=दर्दमन्द, दुखी, दयालु, कोमल हृदय ।

१७२-३५५ **चूंनी**=चुन्नी, एक तरहका जवाहर । **पेसकसी**=पेशकश, भेंट, सौगात ।

१७३ **उबझाइ**=उपाध्याय, जैनसाधुओंकी एक पदवी ।

१७५=**पोसाल**=प्रोषधशाला, उपाश्रय, उपासरा, जैन साधुओंके ठहरनेका स्थान ।

१७६ **सनात्तर विधि**=स्नात्रविधि, स्नान या अभिषेक करनेकी क्रिया। **अस्तोन**=स्तवन, स्तुति ।

१७७ **स्रुतबोध**=श्रुतबोध, प्रसिद्ध छन्दशास्त्र ।

१८२ **पाउजा**=गौना (?)

१८९ **ओखद्-पुरी**=औषधकी पुड़िया ।

१९४ **चिरी**=चिड़िया। **कुरीज**=क्रौंच, सारस, कुररी ('कुररीव दीना')

१९९ **दरबेस**=दरवेश, फकीर ।

२०४ **वितरी**=वितीर्ण कर दी, खर्च कर दी ।

२०५ **जह्मति**=ज़हमत (अरबी), विपत्ति, बीमारी ।

२०७ **हेठ**=नीचे । **पथ**=पथ्य भोजन ।

२१५ **प्रदेस**=परदेश, अन्यत्र, दूसरी जगह ।

२१९ **भौंदाइ**=भोंदू या मूर्ख बना दिया । **संखोली**=छोटा शंख ।

२२४ **बित्तकी सीम**=धनकी हद, बड़ा भारी धनी ।

२२५ **तंबोल**=तांबूल, पान ।

२२९, २३० **खन**=प्रण, प्रतिज्ञा ।

२३४ **द्यौहरे**=देवगृहे, देहरे, मन्दिरमें ।

२३७ **अबेव, अभेव**=अभेद, एक जैसे ।

२३९ **नठे**=भागे हुए । निकले हुए । **उबरे**=बचे ।

२४० **आउवल** या **आरबल**=आयुर्बल ।

२४७ **नाह**=नाथ, स्वामी ।

२४९ **तवाला**=तमारा, तवारा, गश, बेहोशी ।

२५२, ४६७ **उदंगल**=दंगल, उपद्रव, ऊधम । **हटवानी**=हाट या बाजारमें सौदा बेचनेवाले ।

२५३-३२४ **हंडवाई**=वर्तन भांडे (?)

२५४ **बिसाहे**=खरीदे । **खेस**=ओढ़नेका मौटा वस्त्र ।

२५७ **जलाल**=तेज, प्रकाश, प्रभाव । अकबर बादशाहका विशेषण जलालुद्दीन ।

२५८ **सलेम**=सलीम, बादशाह जहाँगीरका राजकुमारावस्थाका नाम ।

२५९ **नूरदी**=नूरुद्दीन जहाँगीर ।

२३७ **रद्दी**=रद्दी (अ०) निकम्मी, बेकार ।

२७५ **जावजीव**=यावज्जीव, जीवनभरके लिए । **बेंगन-पच्चखान**=बैंगन खानेका प्रत्याख्यान या त्याग ।

२८३ **परचून**=परचूरण (गुजराती), फुटकर ।

२८४ **कूप**=कुप्पा, घी तेल रखनेका बर्तन । **दुकूल**=कपड़ा ।

२८६ **सौंज**=सोंझ, साझा, सीर ।

२८८ **कच्छा**=कच्छ, धोतीकी काँछ, अंटी ।

२९० **उजारि**=उजाड़, उजड़ा हुआ, शून्यस्थान ।

२९४ **तोइ**=तोय, पानी ।

२९६ **गोपुर**=नगरद्वार या फाटक ।

२९९ **मया**=माया, ममता, प्रेम ।

३००-५२४ **सरियति**=शर्त ।

३०३ **ठाहर**=जगह, ठहरनेका स्थान ।

३०४ **हलबले**=हड़बड़ाये, घबड़ाये ।

३०९ **छरे**=छड़े, एकाकी, खाली ।

३१० **रफीक**=रफ़ीक़ (अरबी), साथी, सहायक, मित्र ।

३१४-५७१ **नखासा**=नखासा यों तो ढोरोंके बाज़ारको कहते हैं, परन्तु यहाँ बाजारका ही मतलब जान पड़ता है ।

३१७ **टोइ**=टोहि, खोजकर, टटोलकर, **गिरों**=गिरवी, रेहन, मार्गेज ।

३१९ **इजार**=पायजामा । **दुल**=दुर, मोती, मुक्ता । **म्यान**=मियान (फा०), कमर, बीचमें ।

३२१ **पले**=पल्लेमें । **अलंगनी**=अर्गनी, कपड़े टाँगनेकी रस्सी ।

३२४ **रेज परेजी**=मोटी छोटी फुटकर चींजें । रेज़ा (फा०) छोटा टुकड़ा । **बुगचा**=बुकचा, कपड़ों आदिकी छोटी गठरी । **वागे**=जामा, अँगरखा ।

३२५ **कोररे**=कोरे, खालिस ।

३३४ **लटा कुटा**=डंडें कुंडे, बोरिया बँधना, छोटी मोटी चीज़ें । **लटा**= तुच्छ, **कुटा**=छोटा टुकड़ा ।

३३७ **सामा**=सामान, सामग्री ।

३४४ **फरजंद**=पुत्र, लड़का ।

३५३ **दिलवाली**=दिल्लीवाल (?)

३५३ **अमल**=नशा, अफीम ।

३५६ **खतिआइं**=खतौनी करें । **पतिआइं**=प्रतीति या विश्वास करें ।

३६४ **मसक्कति**=मशक्क़त, मेहनत, कष्ट ।

३६५ **घोंघी**=समुद्रका एक शंखजातीय कीड़ा । **गाड़ि**=गढ़ेमें ।

३६९ **ताइत**=तावीज़, (मराठी) ताईत ।

३७२ **फैन**=बनावटी बातें । पानीके फेन जैसी निस्सार ।

४०७ **रासि**=राशि, धन ।

४१२ **मकर चाँदनी**=झूठी चाँदनी, चाँदनी जैसी दिखनेवाली ।

४१४ **बीड़**=बीहड़, बिकट ।

४१८ **धोक**=प्रणाम, पालागी, नमस्कार ।

४२३ **पहपहे**=पौफटे, बिल्कुल सबेरे ।

४३७ **दुबिहार**=खाद्य और स्वाद्य भोजनके त्यागकी प्रतिज्ञा। **नौका-रसी**=दो घड़ी दिन चढ़े बाद प्रतिज्ञा तोड़ना । **नौकरवाली**=माला, जाप।

४४० **बाल**=बाला, पत्नी । **पिउसाल**=पितृशाला, पिताके घर, मायके।

४४५ **पना**=पन्ना, रत्न ।

४४६ **सकृत**=एक समय ।

४६० **अकह**=अकथ्य, न कहने योग्य ।

४६९ **भाखसी**=भाकसी, अन्धकोठड़ी ।

४७१ **मोवास**=मवास, शरणकी जगह, दुर्ग ।

४७९ **हेम-खेम**=क्षेम कुशल ।

४८६ **सात खेत**=दानके सात क्षेत्र—जिनमन्दिर, जिनप्रतिमा, जिनागम और मुनि-आर्यिका श्रावक-श्राविकारूप चार संघ ।

४८८-५९० **लाहनि**=लाहण, लाण, भाजी । मिठाई आदि चीजें जो बिरादरीमें बाँटी जाती हैं ।

४९२ **केवली**=केवलज्ञानी, सर्वज्ञ ।

४९६ **सिताब**=शिताब (फा०), जल्दी ।

४९८ **नफर**=नफ़र (अ०), नौकर, दास ।

५०३-५०५ **अहीरी धाम, अहीरी गेह**=अहीरके घर ।

५०६-१० **गैरसाल**=ग़ैर टकसालका, बनावटी रुपया।

५०९ **टकटोहे**=टटोले, देखे, तलाशी ली।

५१२ **मिही कोथली**=महीन, छोटी थैली, बसनी।

५२१ **पारसी**=फारसी भाषा।

५२३ **निरत**=जाँच, परीक्षा।

५२७ **लिहुरा**=लहुरा, लघु, छोटा।

५३५ **लार**=पीछे पीछे, साथ। **निदान**=जाँच, परीक्षा, कारणका पता लगाना।

५३८ **मता**=मत, सिद्धान्त।

५४५ **आम**=यों, इस तरह। आम (गुजराती)।

५५८ **कलावत**=कलावंत, गायक, गानेवाले।

५५९ **पखावज**=एक बाजा। **तांति**=सारंगी या वीणा।

५७२ **ईति**=दैवकृत उपद्रव (अतिवृष्टिरनावृष्टिः मूषका शलभा शुकाः) **मरी**=महामारी। **गाँठिका रोग**=प्लेग, ताऊन।

५८३ **सारंग-छाग-नन्दावतलंछन**=शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथके चिह्न—हरिण, बकरा, शंख। **चाप**=धनुष (माप)।

५९१ **पोत**=दफा, बार।

५९४ **हेच**=तुच्छ, हीन, निकम्मी।

५९८ **बौन**=वमन, उलटी, क़ै।

६०० **नेवज**=नैवेद्य, देवताको चढ़ाया गया या चढ़ाया जानेवाला द्रव्य।

६०१ **पैजार**=पैज़ार (फा०), जूता।

६०५ **बिंग**=व्यंग।

६१२ **भानहिं**=भंग कर दें, तोड़ दें।

६१६ **चक्क**=चक्र, देश, भूमण्डल।

६३७ **सरदहन**=श्रद्धान, विश्वास।

६४६ **सजोष**=योषा या स्त्रीके सहित, सस्त्रीक।

६८४ **अवद्य**=अनुचित, नहीं कहने योग्य। **भंडकला**=भाँड़ोंकी भोंड़ी गंदी बातें करनेकी कला। **पन**=पण, शर्त।

६९१ **चिंतौन**=चिन्तवन, विचार।

२—नाम-सूची

३—विशेष स्थानोंका परिचय

अजीजपुर=ब्राह्मणोंका गाँव। आगरेसे १० मील उत्तर पश्चिम। अब भी यहाँपर ब्राह्मणोंकी बस्ती है।

अमरसर=जयपुरसे उत्तरकी ओर २४ मील और गोविन्दगढ़ स्टेशनसे १५ मील। शेखावतोंके आदिपुरुष राव शेखाजी वि० सं० १४५५ के लगभग यहाँ गढ़ बनाकर रहे थे। श्वेताम्बर सम्प्रदायके खरतर गच्छका यह एक विशिष्ट स्थान था। यहाँ इस गच्छके जिनकुशलसूरिकी चरण-पादुका वि० सं० १६५३ में और कनकसोमकी १६६२ में स्थापित की गई थीं। कनकसोमने अपनी 'आर्द्रकुमार घमाल'की रचना यहींपर की थी। साधुकीर्ति, समयसुन्दर, विमलकीर्ति, सूरचन्द आदि और भी कई विद्वानोंकी कई छोटी बड़ी रचनायें सं० १६३८ से १६८० तक की[१] मिली हैं जो इसी अमरसरमें रची गई थीं।

अर्गलपुर=यह आगरेका संस्कृत बनाया हुआ रूप है। संस्कृत-लेखकोंने अक्सर इसका प्रयोग किया है। बहुतोंने इसे उग्रसेनपुर भी लिखा है[२]।

अहिछत्ता=अहिच्छत्र। बरेली जिलेका रामनगर। जैनोंका प्रसिद्ध तीर्थ।

इलाहाबास=इलाहाबाद। जहाँगीरनामेमें सर्वत्र इलाहाबास लिखा है। सौभाग्यविजयजीने अपनी तीर्थमालामें भी इलाहाबास लिखा है।

कड़ा मानिकपुर=इलाहाबाद जिलेमें इस नामका कसबा है। पहले जिलेका नाम भी यही था।

कोररा=आगरेसे लगभग २० मील कुर्रा चित्तरपुर नामका गाँव।

कोल=अलीगढ़का पुराना नाम। अलीगढ़की तहसीलका नाम अब भी कोल है।

खैराबाद=सीतापुर (अवध) जिलेमें लखनऊसे ४० मील।

---

१ देखो, जैनसत्यप्रकाश वर्ष ८, अंक ३ में श्री अगरचन्द नाहटाका लेख।

२ श्रीआगराख्ये आदिनगरे पुराणपुरे श्रिया आकररूपे नगरे वा उग्रसेनाह्वये, उग्रसेनः कंसपिताऽत्र प्रागुवासेति प्रवादात्।—युक्तिप्रबोध पृ० ६।

घाटमपुर=कुर्रा चित्तरपुरके पास ही है।

घेंसुआ गाँव=जौनपुरसे आगरे जानेके रास्तेमें एक मंजिलपर।

चाटसू=जयपुर रियासतमें इसी नामसे प्रसिद्ध स्थान।

नरवर=ग्वालियर राज्यमें एक प्राचीन स्थान।

परवेजका कटरा=आगरेमें इस समय इस नामका कोई कटरा नहीं है। पहले रहा होगा।

पिरोजाबाद=फीरोजाबाद जिला आगरा।

फतेहपुर=इलाहाबादसे छह कोस।

मेरठिपुर=मेरठ, यू० पी० का प्रसिद्ध शहर।

रोहतगपुर=रोहतक (पंजाब)।

रौनाही=नौराई (रत्नपुरी)। धर्मनाथ तीर्थंकरका जन्मस्थान। अयोध्याके पास सोहावल स्टेशनसे एक मील। यहाँ अब दो श्वेताम्बर और तीन दिगम्बर सम्प्रदायके जैन मन्दिर हैं।

लखरांउ=फतेहपुरके पास दो कोसकी दूरीपर।

लछिमनपुरा=बहुत करके ई० आई० आर० का इलाहाबाद रायबरेली लाइनका लछमनपुर नामका स्टेशन ही लछिमनपुरा है।

सांगानेर=जयपुरके समीप ७ मीलपर।

साहिजादपुर=इलाहाबाद जिलेमें गंगाके किनारे, दारानगरके पासमें। श्री सौभाग्यविजयकृत तीर्थमालामें इसका उल्लेख है। वे वहाँपर गये थे—

दारानगर साहिजादपुर आया। देखी श्रावक गुरु मन भाया॥
गंगाजीतट नगरी विशाल। ....॥

सुरहरपुर=यह शायद जौनपुरका ही दूसरा नाम है। जौनपुरके तीसरे बादशाह ख्वाजाजहाँका दूसरा नाम मलिक सरवर था जिसे बनारसीदासजीने सुरहर सुल्तान लिखा है। संभव है, इसीके नामसे जौनपुर सुरहरपुर भी कहलाता हो।

हथिनापुर=हस्तिनापुर। मेरठसे २० मील। जैनोंका प्रसिद्ध तीर्थस्थान।

४—विशेष जैन व्यक्तियोंका परिचय

[1] **मुनि भानुचन्द्र**—भान, भानु, भानु सुगुरु और भानुचन्द नामसे इनका अनेक स्थानोंमें उल्लेख किया गया है। ये श्वेताम्बर सम्प्रदायके खरतर गच्छकी लघु शाखाके जिनप्रभसूरिके अन्वयमें थे। इनके गुरुका नाम अभयधर्म उपाध्याय था। इनके साथ रामचन्द्र नामक एक और गुरुभाईके जौनपुरमें आनेका उल्लेख है। अभयधर्म उपाध्यायके एक और शिष्य कुशललाभ थे जिन्होंने वि० सं० १६२४ में वीरमगाँव (गुजरात) में रहते हुए 'तेजसार' नामक रासाकी रचना की थी—

श्रीखरतर गच्छि सहि गुरु राय, गुरु श्रीअभयधरम उबझाय।
सोलह सइ चउबीसिमझार, श्रीवीरमपुर नयर मझार ॥ २ ॥
अधिकारइं जिनपूजा तणइ, वाचक कुशललाभ इमि भणइं।

बनारसी-विलासमें संग्रह की हुई कुछ रचनाओंमें और नाममालामें भी कविवरने अपने इन भानुचन्द्र गुरुका भक्तिपूर्वक उल्लेख किया है। यथा—

१—गोयम-गणहर-पय नमौं, सुमरि सुगुरु रविचंद।
सरसुति देवि प्रसाद लहि, गाऊं अजितजिनिंद ॥
—अजितनाथके छन्द

२—भानु उदय दिनके समय, चंद उदय निसि होत।
दोऊ जाके नाममैं, सो गुरु सदा उदोत ॥ —ध्यानबत्तीसी

३—इति प्रश्नोत्तरमालिका, उद्धव-हरिसंवाद।
भाषा कहत बनारसी, भानु सुगुरुपरसाद ॥—प्रश्नोत्तरमालिका

४—संवरौ सारद सामिनि औ गुरु भान।
कछु बलमा परमारथ करौ बखान ॥—अध्यात्मपदपंक्ति १०

५—ओंकार परनामकरि, भानु सुगुरु धरि चित्त।
रचौं सुगम नामावली, बाल-विबोधनिमित्त ॥ १

---

१ श्री मेघविजयजी महोपाध्यायने अपने युक्तिप्रबोधकी दूसरी गाथाकी टीकामें बनारसीदासजीका परिचय देते हुए लिखा है—

'खरतरगणस्य श्राद्धः, लघुशाखीयखरतरगणस्य श्रावकः'।

२ देखो आनन्द-काव्य-महोदधि सप्तमभागकी भूमिका पृ० १५६

६—जे नर राखैं कंठ निज, होइ सुमति परगास ।
भानु सुगुरु परसादतैं, परमानंद विलास ॥ १७५—नाममाला

२ पांडे रूपचन्द और **३ पं० रूपचन्द**—इस नामके दो विद्वानोंका पता चलता है। जिनमेंसे एक तो वे हैं जिनका बनारसीदासजीने अपने गुरुके रूपमें उल्लेख किया है (६३४) और जिनके पास उन्होंने गोम्मटसारका अध्ययन किया था (६३१)। इन्हींके प्रसादसे उनकी डावाँडोल अवस्थामें स्थिरता आई थी। इन्हींके प्रभावसे वे दृढ़ जैन हुए थे। इनकी पांडे पदवीसे अनुमान होता है कि ये किसी भट्टारकके शिष्य थे। उस समय भट्टारकोंके शिष्य पांडे कहलाते थे। उन्होंने तिहुनासाहुके मन्दिरमें आकर डेरा लिया था, इससे भी इस अनुमानकी पुष्टि होती है। गोम्मटसार सिद्धान्तके सिवाया ये अध्यात्मके भी अच्छे मर्मज्ञ होंगे ऐसा जान पड़ता है। दूसरे रूपचन्दका उल्लेख बनारसी-दासजीने नाटक समयसारमें अपने पाँच साथियोंमेंसे एकके रूपमें किया है जिनके साथ वे निरन्तर परमार्थकी चर्चा किया करते थे। रूपचन्दजीकी 'परमार्थी दोहा-शतक' नामकी एक बड़ी ही सुन्दर रचना है जो जैनहितैषी (भाग ६, अंक ५-६) में हम 'रूपचन्दशतक' के नामसे प्रकाशित कर चुके हैं। प्रत्येक दोहेके पूर्वार्धमें परमार्थकी एक बात कही गई है और उत्तरार्धमें वह उदाहरणसे स्पष्ट की गई है। 'गीत परमार्थी' नामकी भी एक रचना रूपचन्दजीकी है, जो हमें पूरी नहीं मिली। उसके छह गीत हमने 'परमार्थ जकड़ी-संग्रह' में प्रकाशित किये थे। उसमेंके कुछ गीत जैनहितैषीमें भी निकल चुके हैं। रूपचन्दजीकी मंगलगीतप्रबन्ध (पंच मंगल) नामकी एक और रचना तो घर घर पढ़ी जाती है। परमार्थी दोहा शतकके नीचे लिखे कुछ दोहोंसे पाठक रूपचन्दजीकी रचनाओंकी विशेषताका अनुमान कर सकेंगे—

चेतन चित्-परिचय बिना, जप तप सबै निरत्थ ।
कन बिन तुस जिमि फटकतैं, आवै कछू न हत्थ ॥
चेतनसौं परिचय नहीं, कहा भए व्रतधारि ।
सालि विहूनें खेतकी, वृथा बनावति बारि ॥
बिना तत्व-परिचय बिना, अपर भाव अभिराम ।
ताम और रस रुचत है, अमृत न चाख्यौ जाम ॥

जैनसाहित्यके सबसे पुराने प्रकाशक स्व० भीमसी माणिकने प्रकरण-रत्नाकरके दूसरे भागमें बनारसीदासजीके समयसार नाटकको गुजराती टीकासहित (दिसम्बर सन् १८७६) प्रकाशित किया था। उसके प्रारंभमें लिखा है कि "इस ग्रन्थकी व्याख्या कोई रूपचन्द नामक पंडितने की है, जो हिन्दुस्तानी भाषामें होनेसे सबकी समझमें नहीं आ सकती। इसलिए उसका आश्रय लेकर हमने गुजरातीमें व्याख्या की है। व्याख्याकर्त्ताने आदिमें यह मंगलाचरण किया है—

श्रीजिनवचनसमुद्रकौ, कौं लगि होइ बखान।
रूपचन्द तौहू लिखै, अपनी मति अनुमान॥"

समयसारकी यह रूपचन्दकृत टीका अभी तक हमने नहीं देखी। परन्तु हमारा अनुमान है कि यह बनारसीदासके साथी रूपचन्दकी होगी, गुरु रूपचन्दकी नहीं। अन्य रचनाओंके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता कि कौन किस रूपचन्दकी है।

अर्ध कथानकके अनुसार गुरु रूपचन्दजीका स्वर्गवास विक्रम संवत् १६९४ के लगभग हुआ था।

४ पांडे राजमल्ल—नाटक समयसारमें बनारसीदासजीने लिखा है—

पाडे राजमल्ल जिनधरमी, समयसार नाटकके मरमी।
तिन गिरंथकी टीका कीनी, बालाबोध सुगम कर दीनी॥

इसी बालबोध टीकाका उल्लेख अर्धकथानकमें भी किया गया है, और लिखा है कि वि० सं० १६८० में अध्यात्म चर्चा करनेके प्रेमी अरथमलजी ढोर मिले और उन्होंने समयसार नाटककी राजमल्लजीकृत टीका लिखकर दी और कहा कि इसे तुम पढ़ो, इससे सत्य क्या है सो तुम्हारी समझमें आ जायगा। हमारा अनुमान है कि ये राजमल्लजी वही हैं जिनके बनाये हुए जम्बूस्वामीचरित, लाटीसंहिता, अध्यात्मकमलमार्तण्ड और पंचाध्यायी (अपूर्ण) नामक संस्कृत ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और अभी अभी पं० जुगलकिशोरजी मुख्तारको जिनके एक पिंगल ग्रन्थ 'छन्दो विद्या'की प्रति प्राप्त हुई है[1]।

---

[1] देखो अनेकान्त वर्ष ४ अंक २–३–४ में 'राजमल्लका पिंगल'।

१ जम्बूस्वामीचरितका रचना-समय वि० सं० १६३२ और लाटी-संहिताका १६४१ है, अतएव वि० सं० १६८० में अरथमलजीने जो टीका लिख कर दी, उसकी रचनाका समय राजमल्लजीके रचनाकालसे बेमेल नहीं है।

२ जम्बूस्वामीचरितकी रचना अग्रवालवंशी साहु टोडरकी प्रार्थनासे राजमल्लजीने अर्गलपुर या आगरेमें ही की थी, इसलिए आगरेके श्रावक उनसे और उनकी रचनाओंसे परिचित होंगे। कमसे कम उनके ग्रन्थ आगरेमें उपलब्ध होंगे, तभी तो अरथमलजीने उनकी टीका लिखकर दी।

३ लाटीसंहिताकी रचना वैराट नगरमें हुई थी जो कि जयपुरसे ४० मील-पर है और आगरेसे भी अधिक दूर नहीं है। इससे भी बालबोध टीकाके कर्त्ता इन्हींको माननेकी इच्छा होती है।

४ राजमल्लजीने अपना ' छन्दोविद्या ' ग्रन्थ नागौरके उस समयके महान् धनी सेठ राजा भारमलजीको प्रसन्न करनेके लिए बनाया था और उसमें जगह जगह भारमल्लजीके वैभवका वर्णन किया है। राजा भारमल्ल भी श्वेताम्बर सम्प्रदायके श्रीमाल वणिक थे और रांका उनका गोत्र था। क्या आश्चर्य जो अरथमलजीको राजा भारमल्लके जातीय स्रोतसे ही राजमल्ल-जीकी बालबोध टीकाका परिचय मिला हो, जिसकी पोथी लिखकर उन्होंने बनारसीदासजीको दी। बनारसीदासजी स्वयं भी श्रीमाल थे।

५ राजमल्लजीके अध्यात्मकमलमार्तण्डादि ग्रन्थोंको पढ़नेसे पता लगता है कि वे समयसारादि अध्यात्मग्रंथोंके विशेष मर्मज्ञ थे, अतएव उन्होंने उनकी टीकायें भी लिखी हों तो आश्चर्य नहीं।

इन सब बातोंपर विचार करनेसे हमें तो लाटीसंहिता आदिके कर्ता राजमल्ल ही बालबोध टीकाके कर्त्ता मालूम होते हैं।

समयसारके अतिरिक्त प्रवचनसार, पंचास्तिकाय और द्रव्यसंग्रहकी भी बालबोध टीकायें पं० राजमल्लजीकी बतलाई जाती हैं।

उनके पांडे उपनामसे प्रकट होता है कि वे भी किसी भट्टारकके शिष्य थे। उन्होंने अपनेको काष्ठासंघी भट्टारक हेमचन्द्रके आम्नायका लिखा है। लाटीसंहिताको उन्होंने वैराट नगरमें, जम्बूस्वामीचरितको आगरेमें और छन्दोविद्याको राजा भारमल्लके नगर नागौरमें लिखा था। इससे भी यही

अनुमान होता है कि वे भट्टारक-शिष्य थे जो प्राय: एक स्थानमें नहीं रहते। साधारण गृहस्थ होते, तो उनका कोई एक स्थायी निवासस्थान होता।

पं० राजमल्लजी अपने समयके बहुत बड़े विद्वान्, कवि और विचारक थे। उनकी रचनायें बहुत ही प्रौढ़ हैं।

पंचपुरुष–नाटक समयसारमें पं० बनारसीदासजीने पाँच पुरुषोंका उल्लेख किया है जो उनके साथ निरन्तर परमार्थ-चर्चा किया करते थे— रूपचन्दजी, चतुर्भुज, भगवतीदास, कुँवरपाल और धर्मदास। इनमेंसे **रूपचन्दजी**का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। **चतुर्भुज**के विषयमें हम कुछ नहीं जानते और **धर्मदास** शायद वे ही हैं जिनके साझेमें बनारसी-दासजीने कुछ समय तक जवाहरातका व्यापार किया था और जो जसू अमरसी ओसवालके छोटे भाई थे।

५ भगवतीदासजी–ये ब्रह्मविलासके कर्त्ता भैया भगवतीदासजीसे कोई जुदा ही मालूम होते हैं। क्योंकि ब्रह्मविलासमें उनकी जितनी रचनायें संग्रहीत हैं, वे संवत् १७३१ से १७५५ तककी हैं। समयसारकी रचना वि० सं० १६९३ में हुई है। उस समय बनारसीदासजीके साथ परमार्थ चर्चा करनेवाले भगवती-दासजीकी उम्र अधिक नहीं तो पचीस तीस वर्षकी होनी चाहिए, और इस लिए उनके ब्रह्मविलासके कर्त्ता होनेमें सन्देह होता है। खास करके इसलिए कि उनकी कोई भी रचना १७३१ से पहलेकी नहीं है। पं० हीरानन्दजीने भी अपने पद्यबद्ध पंचास्तिकायमें (वि० सं० १७११) एक भगवतीदास ज्ञाताकी चर्चा की है* और शायद वे ही बनारसीदासजीके साथी होंगे।

ब्रह्मविलासके कर्त्ता भैया भगवतीदासजी भी आगरेके रहनेवाले थे और कटारिया गोत्रके ओसवाल थे। इससे इतना तो मालूम होता है कि वे भी बनारसीदासजीके अध्यात्ममार्गके अनुयायी होंगे और उन्हींके समान श्वेतांबरसम्प्रदायसे दिगम्बरसम्प्रदायमें आये होंगे। आश्चर्य नहीं जो उन्होंने अपने बचपनमें बनारसीदासजीको देखा भी हो।

६ कुँअरपालजी—इनके विषयमें हम इतना ही जानते हैं कि सूक्तमुक्ता-वलीका पद्यानुवाद बनारसीदास और कुँअरपाल दोनोंने मिलकर सं० १६९१ में

---

* तहां भगौतीदास है ग्याता। घनमल और मुरारि विख्याता। —पंचास्तिकाय

किया था। अपनी ज्ञानबावनीमें भी जो वि० सं० १६८६ में बनी थी उन्होंने कुँअरपालका उल्लेख किया है। बनारसीदासजीने उन्हें अपना एकचित्त मित्र बतलाया है। महोपाध्याय मेघविजयजीने अपने युक्तिप्रबोधमें लिखा है कि बनारसीदासजीके परलोकगत होनेपर कुँअरपालने उनके मतको धारण किया और वे उनके अनुयायियोंमें गुरुके समान सर्वमान्य हुए।

७ **जगजीवन**=यद्यपि स्वयं पं० बनारसीदासजीने अपनी रचनाओंमें कहीं इनका उल्लेख नहीं किया है परन्तु ये भी उनके अनुयायी थे और वि० सं० १७०१ में इन्होंने बनारसीदासजीकी तमाम रचनाओंको एकत्र किया और उसे बनारसीविलास नाम दिया। ये आगरेके रहनेवाले गर्गगोत्री अग्रवाल थे। इनके पिताका नाम संघवी अभयराज और माताका मोहन दे था। अवश्य ही ये बनारसीदासके साथियों और अनुयायियोंमें एक रहे होंगे।

"समै जोग पाइ जगजीवन विख्यात भयौ,
ज्ञानिनकी मंडलीमें जिसकौ विकास है।"

पं० हीरानन्दजीने अपने पंचास्तिकाय (पद्यानुवाद) में उनके पिता संघवी अभयराज और माता मोहनदेका उल्लेख करनेके बाद कहा है कि वे जाफरखाँ नामक किसी उमरावके दीवान थे—

ताकौ पूत भयौ जगनामी, जगजीवन जिनमारगगामी।
जाफरखाँके काज सँवारे, भया दिवान उजागर सारे॥

पं० हीरानन्दजीने उक्त जगजीवनजीके कहनेसे ही वि० सं० १७११ में पंचास्तिकायकी रचना की थी।

८ **हीरानन्द मुकीम**—ये ओसवाल जैन और सुप्रसिद्ध जगतसेठके वंशज थे। वि० सं० १६६१ में इन्होंने सम्मेदशिखरजीकी यात्राके लिए संघ निकाला था। शाहजादा सलीमके कृपापात्र और खास जौहरी थे। सलीमके बादशाह होनेपर इन्होंने एक बार वि० सं० १६६७ में उनको अपने घर आमंत्रित करके बहुत बड़ा नजराना दिया था जिसका वर्णन एक कविने आलंकारिक भाषामें किया है[1]—

---

१ यह कविता श्रीमणिलाल बकोरभाई व्यासने 'श्रीमालीओना ज्ञातिभेद' नामक पुस्तकमें दी है, जो बहुत ही अशुद्ध है। यहाँ हमने उसके [illegible] ही शुद्ध करके उद्धृत किये हैं।

संवत सोलहसतसठे, साका अति कीया।
मेहमानी पातिसाहदी, करके जस लीया।

*　　*　　*

चुनि चुनि चोखी चुनी, परम पुराने पना,
कुन्दनकों देनें करि लाए घन तावके।
लाल लाल लाल लागे कुतब (?) बदखशां[1]
विविध बरन बने बहुत बनावके॥
रूपके अनूप आछे अबलक[2] आभरन,
देखे न सुने न कोऊ ऐसे राज रावके।
बावन मतंग माते नंदजू उचित (?) कीने,
ज़रीसेती जरि दीनें अंकुस जड़ावके॥

*　　*　　*

दानके विधानको बखान हौं कहाँ लौं करौं,
बीरनिमें हीरा देत हीरानंद जौहरी॥

*　　*　　*

पाइए न जेते जवाहर जगमांझ ढूँढ़े,
जेतो ढेर जौहरी जवाहरको लायौ है।
कसबी[3] कोमांच (?) मखमल जरबाफ़ साफ़,
झरोखालौं गृहलग मगमैं बिछायौ है।
जंपत 'जगन' विधि आन न बरनि जात,
जहाँगीर आए नंद आनंद सवायौ है।
करसी (?) छिटकि कहूँ कहूँ उमराउनकी
पेसकसी[5] पेखतैं पसीना तन आयौ है।

---

१ एक देश, जहाँका लाल (रत्न) बहुत प्रसिद्ध है। २ चितकबरा। ३ बढ़िया मलमल। ४ जरीके कपडे। ५ भेंट, उपहार।

५–श्रीमाल जाति

पं० बनारसीदासजी श्रीमाल थे। इस जातिकी उत्पत्ति श्रीमाल नामक स्थानसे बतलाई जाती है। अहमदाबादसे अजमेर जानेवाली रेलवे लाइनके पालनपुर और आबू रोड स्टेशनसे लगभग ५० मील गुजरात और मारवाड़की सरहदपर प्राचीन श्रीमालके खंडहर पड़े हुए हैं और अब उक्त स्थान भिन्नमाल कहलाता है। इस जातिकी उत्पत्तिका वर्णन श्रीमाल पुराणमें किया गया है और लिखा है कि सतयुगमें विष्णुपत्नी लक्ष्मीदेवीने इसकी स्थापना की थी। सतयुगमें इसका नाम पुष्पमाल, त्रेतामें रत्नमाल, द्वापरमें श्रीमाल और कलियुगमें भिन्नमाल रहा है। विमल-प्रबन्ध और विमल-चरितके अनुसार द्वापरयुगके अन्तमें श्रीमाल नगरमें श्रीमाल जातिकी स्थापना हुई और श्री देवी इस जातिकी कुल देवी मानी गई[1]। एक श्वेताम्बर जैन कथाके अनुसार श्रीमल्ल राजाके नामसे उसके नगरका नाम श्रीमाल पड़ा था। इसी तरह एक और कथाके अनुसार गौतम स्वामीने उस राजाको जैन बनाकर उसके नामसे श्रीमाल कुल स्थापित किया। लक्ष्मी श्रीमल्ल राजाकी पुत्री थी और वह आबूके परमार राजाको ब्याही गई थी[2]। परन्तु ये सब पौराणिक कहानियाँ हैं, इनमें कुछ अधिक तथ्य नहीं मालूम होता।

पं० बनारसीदासजी इस कहानीकी कोई चर्चा नहीं करते और वे कहते हैं कि रोहतक (पंजाब) के बिहोली गाँवमें राजवंशी राजपूत रहते थे, जो गुरुके उपदेशसे जैन हो गये और णमोकार मंत्रकी माला पहिनकर श्रीमाल कहलाये और बिहोलीके राजाने उनका गोत्र बिहोलिया ठहराया। इसमें इतना तो ठीक मालूम होता है कि बिहोली गाँवके कारण इनका गोत बिहोलिया हुआ; जैनोंके अधिकांश गोत्रोंके नाम स्थानोंके कारण ही रक्खे गये हैं, परन्तु समग्र श्रीमाल जातिके उत्पत्तिस्थानके विषयमें वे कुछ नहीं कहते। अधिक संभव यही है कि भिनमाल[3] या श्रीमालसे ही श्रीमाल जाति निकली हो।

श्रीमाल जातिकी जो गोत्र सूची मिलती है, उसमें १२५ के करीब गोत्रोंके नाम हैं, जिनमेंसे अर्धकथानकमें कूकड़ी, खोबरा, चिनालिया, ढोर,

---

१–२ देखो 'श्रीमालीओनो ज्ञातिभेद' पृ० ४४–४५। ३ हुएनसंगके समयमें यह नगर गुर्जर देशकी राजधानी था।

बदलिया[1], बिहोलिया, ताँबी[2], पीतिया, मोठिया, और सिंघड़[3] गोत्रके श्रीमालोंका उल्लेख किया गया है।

श्रीमाल जाति धनी और सम्पन्न जाति है। गुजरात और बम्बई प्रान्तमें इसकी आबादी अधिक है। राजपूतानेमें भी। वैश्योंके अतिरिक्त श्रीमाल ब्राह्मण और श्रीमाल सुनार भी हैं। वैश्योंमें जैन और वैष्णव श्रीमाल दोनों हैं। जैनोंमें श्वेताम्बर सम्प्रदायके अनुयायी ही अधिक हैं। खानदेशके धरणगाँव आदि स्थानोंमें श्रीमालोंके कुछ घर दिगम्बर सम्प्रदायके अनुयायी भी हैं।

गुजरात और बम्बई प्रान्तके श्रीमालोंमें किसी भी गोत्रका अस्तित्व नहीं है। इस विषयमें एक कहावत प्रसिद्ध है कि " गुजरातमें गोत नहीं, और मारवाड़में छोत (छूत) नहीं। " यहाँ ओसवाल पोरवाड़ आदि जातियोंमें भी गोत्र नहीं है। अपने अपने धंधोंसे ही वे अपना परिचय देते हैं, जैसे घिया, दोसी, नाणावटी, जवेरी (जोहरी) आदि। परन्तु बनारसीदासजीने आगरा, जौनपुर, खैराबाद आदिके श्रीमालोंका उल्लेख गोत्रसहित किया है। जान पड़ता है ये लोग वहाँ पहलेसे बसे हुए होंगे और मारवाड़की ओरसे उस ओर गये होंगे जहाँ कि नामके साथ गोत्र अवश्य रहता है।

जहाँ तक हम जानते हैं वैश्योंकी वर्तमान जातियाँ दसवीं शताब्दिसे पहलेकी नहीं हैं[4]। श्रीमाल जातिका भी कोई उल्लेख इससे पहलेका नहीं मिलता। सतयुग द्वापर या त्रेतामें जातियोंकी उत्पत्तिसम्बन्धी कथाओंमें कोई ऐतिहासिकता नहीं है।

---

१ दिल्लीके समीप बादली नामका स्थान है। बदलिआ गोत्र शायद उसीसे प्रसिद्ध हुआ होगा। २ इस गोत्रके लोग कलकत्तेमें अब भी हैं। ३ जयपुरमें सिंघड़ गोत्रके श्रीमाल हैं। ४ देखो, मेरा लिखा ' परवार जातिके इतिहासपर कुछ प्रकाश '।

—परवारबन्धु, अप्रैल, १९४०।

६—नरवरकी जागीर

ऐसा मालूम होता है कि जब संवत् १६०८ में मूलदासजीके पुत्र उत्पन्न हुआ उसके बहुत पहले ही वे नरवरके मोदी बनकर गये होंगे जब कि वहाँका हाकिम मुगल रहा होगा। क्योंकि संवत् १६०८ में मालवा हुमायूँके मातहत नहीं था। उस समय हुमायूँ हिन्दुस्तानमें नहीं, काबुलमें था। संवत् १६०८ में हिजरी सन् ९०८ था, और उस समय मालवेमें शेरशाहका अमल था और उसकी तरफसे शुजाखाँ हाकिम था।

मालवेमें मुहम्मद तुगलकके वक्तसे अलग बादशाही हो गई थी। वहाँका आखिरी बादशाह महमूद खिलजी था और उससे गुजरातके सुलतान बहादुरने ९ शाबान सन् ९३७ (चैत्र सुदी ११ संवत् १५८७) को मालवा छीन लिया था।

हिजरी सन् ९४१ (संवत् १५९२) में हुमायूँ बादशाहने सुलतान-बहादुरको भगाकर मालवा लिया। सन् ९४२ (संवत् १५९३) में जब बादशाह मालवेसे आगरे और आगरेसे बंगालेको शेरखाँ पठानसे लड़ने गये, तो महमूद-खिलजीके गुलाम मल्लूखाँने मुगलोंको निकालकर मालवेमें अपना अमल कर लिया और बादशाह अपना नाम रख लिया। सन् ९४९ (संवत् १५९९) में शेरखाँने कादिरशाहको निकालकर शुजाखाँको मालवेमें रक्खा। सन् ९६२ (संवत् १६१२) में शुजाखाँ मर गया। उसका बेटा बापजीद मालवेका मालिक होकर बाजबहादुर कहलाने लगा। इसके बाद संवत् १६१८ में अकबर बादशाहके अमीरोंने बाजबहादुरको निकालकर मालवेको दिल्लीके राज्यमें मिला दिया।

इस व्यवस्थासे मालूम होता है कि संवत् १६०८ में जो शुजाखाँ मालवे-का मालिक था, वह हुमायूँका सरदार नहीं शेरखाँका सरदार था और उस समय शेरखाँके बेटे सलीमशाहके मातहत था।

जानना चाहिए कि कालपी और ग्वालियर बाबरके समयसे हुमायूँ बादशाहके अधिकारमें थे। कालपीमें बादशाहका चचा यादगार नासिर-मिरजा और ग्वालियरमें अबुल कासिम हाकिम था। नरवर ग्वालियरके नीचे था, सो वहाँ कोई मुगल हाकिम रहता होगा, जिसके मोदी बनारसी-दासजीके दादा मूलदास थे। परंतु संवत् १६०८ में नरवरका हाकिम मुगल नहीं पठान था। हाँ, संवत् १६१३ में मुगल होगा। क्योंकि संवत् १६१२ से फिर हुमायूँका राज्य दिल्लीमें हो गया था।

७–जौनपुरका इतिहास

१–जौनपुरके बादशाह

बनारसीदासजीने जौनपुरके बादशाहोंके नौ नाम लिखे हैं—१ जौनाशाह, २ बबक्कर, ३ सुरहर, ४ दोस्तमुहम्मद, ५ शाह निजाम, ६ शाह बिराहिम (इब्राहीम), ७ शाह हुसेन, ८ गाजी, ९ बख्या सुलतान।

फारसी तवारीखोंमें जौनपुरका हाल ढूँढ़कर जब ऊपरके लेखसे मिलाया तो, कुछ और ही पाया, और नाम भी कुछ और ही पाये। नाम उन तवारीखोंके ये हैं—१ आईने अकबरी, २ तारीख निजामी, ३ तारीख फरिश्ता, ४ तारीख फीरोजशाही, ५ सेरुलमुताखरीन, ६ जुगराफिए व तारीख जौनपुर वगैर। इनमें सबसे पुरानी फिरोजशाही है। इन तवारीखोंमें जो विवरण जौनपुरकी सल्तनतका लिखा है, उसका सारांश यह है—

खिलजियोंका राज्य जानेपर तुगलक जातिका दिल्लीमें उदय हुआ। पहला बादशाह इस घरानेका गाजी तुगलक पंजाबका सूबेदार था, जो कि ता० १ शाबान सन् ७२१ (भादों सुदी ३ संवत् १३७८) को सब अमीरोंकी सलाहसे दिल्लीके सिंहासनपर बैठा और रबीउलअव्वल सन् ७२५ (फागुन सुदी और चैत्र वदी संवत् १३८१) में मरा।

उसका बेटा मलिक फखरुद्दीन जौना सुलतान नासिरउलदीन मुहम्मद-शाहके नामसे तख्तपर बैठा। इसीको मुहम्मद तुगलक भी कहते हैं। यह २१ मुहर्रम सन् ७५२ (चैत वदी ८ संवत् १४०७) को सिंधमें मर गया।

मुहम्मद तुगलकके बेटा नहीं था, इसलिए उसके काका सालार रजबका बेटा फीरोजशाह बारबुक बादशाह हुआ। इसने सन् ७७४ (संवत् १४२९) में बंगालसे लौटते हुए, गोमती नदीके तीरपर एक अच्छी सम चौरस जमीन देखकर वहाँ शहर बसाया, और उसका नाम अपने चचेरे भाई मुहम्मद तुगलकके असली नाम मलिक जौनाके नामसे जौनपुर रक्खा, क्योंकि उसने स्वप्नमें मलिक जौनाको यह कहते हुए देखा था कि, इस शहरका नाम मेरे नामपर रखना।

फीरोजशाह १३ रमजान सन् ७९० (भादों सुदी १५ संवत् १४४५) को ९० वर्षका होकर मरा। उसका पोता गयासुद्दीन तुगलक बादशाह हुआ।

वह २१ सफर सन् ७९१ (फागुन वदी ८ संवत् १४४५) को मारा गया। उसका चचेरा भाई अबूबक उसकी जगह बैठा। वह भी २० जिलहिज्ज सन् ७६१ (पोष वदी ७ संवत् १४१७) को मर गया। तब उसका काका नासिरउलदीन मुहम्मदशाह बादशाह हुआ। वह १७ रबीउल अव्वल सन् ७९६ (फागुन वदी ४ संवत् १४५०) को मर गया। उसका बेटा हुमायूँ खां १९ को तख्तपर बैठा और १॥ महीने पीछे ही मर गया। तब उसके भाई नासिरउलदीन महमूदशाहको ख्वाजाजहाँ वजीरने उसकी जगह बैठाया। इसने पूर्वके हिन्दुओंका स्वतंत्र हो जाना सुनकर ख्वाजाजहाँको उनके ऊपर भेजा। यही पहला बादशाह जौनपुरका हुआ। इसका नाम मलिक सरवर था और फीरोजके समयमें ड्योढ़ीका दारोगा था। नासिरउद्दीन मुहम्मद-शाहने इसको वजीर बनाकर ख्वाजाजहाँका खिताब दिया और जब नासिरउद्दीन महमूदशाहने इसे पूर्वको भेजा, तो सुलतानुलशर्कका खिताब भी उसको दे दिया, जिसका अर्थ होता है पूर्वका बादशाह।

१ सुलतानउलशर्क **ख्वाजाजहाँने** हिन्दुओंपर जीत पाकर जौनपुरमें अपनी राजधानी स्थापित की। उसका राज्य परगने कोलसे तिरहुत तक था। वह सन् ८०२ (संवत् १४५६–५७) में मरा। उसके संतान नहीं थी, करनफल नाम एक लड़केको बेटा बनाया था। वही उसके पीछे जौनपुरका बादशाह हुआ और मुबारिकशाह नाम रक्खा।

२ **मुबारिकशाह**—तुगलकोंकी बादशाही दिन दिन गिरती देखकर यह पूरा स्वतंत्र हो गया। दो वर्ष पीछे सन् ८०४ (संवत् १४५८–५९ में) मरा। संतान इसके भी नहीं थी, भाई तख्तपर बैठा।

३ **इब्राहीमशाह** (मुबारिकशाहका भाई)—इसके समयमें दिल्ली तुगलकोंसे सैयदोंने ले ली। पहले सैयद खिजरखाँ और फिर सैयद मुहम्मद-शाह वहाँका बादशाह हुआ। इब्राहीम दोनोंसे ही लड़ता लड़ता सन् ८४४ (संवत् १४९६ में) मर गया।

४ **महमूदशाह** (सुलतान इब्राहीमका बेटा)—इसके समयमें दिल्लीका बादशाह मुहम्मदशाह मर गया और अलाउद्दीनशाह बैठा। अमीरोंने उससे नाराज होकर महमूदशाहको बुलाया तब अलाउद्दीन पंजाबके हाकिम बहलोल लोदीको दिल्ली सौंपकर बदाऊँ चला गया। बहलोलसे और महमूदसे लड़ाई

होती रही, निदान महमूद सन् ८६२ (संवत १५१४-१५ में) मर गया। बेटा न था, भाई तख्तपर बैठा।

५ **मुहम्मदशाह** (महमूदका भाई)—इसने बहलोलसे सुलह कर ली, परन्तु फिर लड़ाई होने लगी और मुहम्मदशाह अपने भाइयोंके झगड़ेमें मारा गया। पाँच महीने राज्य किया। उसका भाई हुसेनशाह बादशाह हुआ।

६ **हुसेनशाह**—इससे और बहलोलसे भी बड़े बड़े युद्ध हुए, निदान बहलोलने जौनपुर लेकर अपने बड़े बेटे बारबुकको दे दिया। हुसेनशाह विहारमें चला गया।

७ **बारबुक शाह लोदी**—सन् ८९४ (संवत् १५४५-४६) में बहलोल मरा और छोटा बेटा निजामखाँ दिल्लीमें बादशाह हुआ और सुलतान सिकंदर कहलाया। बारबुक उससे लड़ने गया और हारा। सिकंदरने जौनपुर तो उसे फेर दिया, परन्तु मुल्कमें अपने हाकिम बैठा दिये, जिनके जुलमोंसे जौनपुरके आश्रित राजाओंने तंग होकर सुलतान हुसेनको बुलाया। वह सन् ८९५ (संवत् १५४६-४७) में आकर सिकंदरसे लड़ा, परंतु हार कर बंगालेमें चला गया। सिकंदर अपने बेटे जलालखाँको जौनपुरमें बैठाकर चला गया।

८ **जलालशाह लोदी**—७ जीकाद सन् ९२३ (मंगसर सुदी ८ संवत् १५७३) को सिकंदर मरा और जलाल शाहका भाई इब्राहीमशाह दिल्लीके तख्तपर बैठा, उसने जलालशाहको निकालकर जौनपुर दरियाखाँ लोहानीको दे दिया।

९ **दरियाखाँ लोहानी**के समयमें बाबर बादशाहने सुलतान इब्राहीमको मारकर दिल्ली ले ली। उसी समय दरियाखाँ भी मर गया।

१० **बहादुरशाह** (दरियाखाँका बेटा)—बापके पीछे बादशाह हो गया। क्योंकि पठानोंकी बादशाही दिल्लीसे जाती रही थी। बाबर बादशाहने हुमायूँको भेजा, उसने बहादुरशाहको निकालकर हिंदू बेगको जौनपुरमें रख दिया। उसके पीछे बाबाबेग उसका बेटा जौनपुरमें हाकिम हुआ।

११ **बाबा बेग**को शेरखाँ सूरने, हुमायूँ बादशाहसे बादशाही लेनेके पीछे जौनपुरसे निकाल दिया और अपने बेटे आदिलखाँको जौनपुरका हाकिम बनाया।

१२ आदिलखाँ सूर—१२ रबीउल अव्वल सन् ९५२ (जेठ सुदी १४ संवत् १६०२) को शेरशाहके मरनेपर सलीमशाह तख़्तपर बैठा, उसने आदिलखाँको बुलाकर बयानेका किला दे दिया और जौनपुर खालसे कर लिया। फिर जौनपुर स्वतंत्र राज्य नहीं हुआ, पठानोंके पीछे मुगलोंके राज्यमें भी वहाँ हाकिम रहते रहे।

यह जौनपुरका संक्षिप्त इतिहास है। जिन्होंने इतिहास नहीं देखा है, वे यही जानते हैं कि, जौनपुर जौनाशाह (मुहम्मद तुगलक) ने बसाया था, और यही सुन सुनाकर बनारसीदासजीने भी पहला बादशाह जौनाशाह लिखा है। यह बात कविवरके ३०० वर्ष पहलेकी थी और सो भी किसी इतिहासके आधारपर नहीं, पुराने लोगोंसे पूछपरछके लिखी थी, उसमें इतनी भूल होना संभव है। उन्होंने इस विषयमें स्वतः सशंकित होकर लिखा है कि—

" हुते पूर्व पुरुषा परधान। तिनके वचन सुने हम कान।
बरनी कथा जथाश्रुत जेम। मृषादोष नहिं लागे एम ॥ ३७२ ॥

इस प्रकार प्रथम बादशाह जौनाशाह नहीं, किन्तु फीरोजशाहको समझना चाहिए। दूसरा जो बबक्करशाह लिखा है, वह फीरोजशाह बारबुक है। बारबुकका अपभ्रंश बबक्कर शाह हो सकता है।

तीसरा जो सुरहर सुलतान लिखा है वह ख्वाजाजहाँ है, जिसका नाम मालिक सरवर था, सरवर ही सुरहर लिखा गया है।

चौथा जिसको दोस्त मुहम्मद लिखा है, वह मुबारिकशाह है, जिसका नाम करनफल था। शायद जौनपुरवाले उसे दोस्त मुहम्मद कहते थे।

पाँचवाँ जिसको शाह निजाम लिखा है, उसका पता मुबारिकशाह और इब्राहीमके बीचमें कुछ नहीं लगता।

छट्ठा जो शाह बिराहिम लिखा है, वह इब्राहीम ही है।

सातवाँ जिसे शाह हुसेन लिखा है, वह इब्राहीम शाहके बेटे महमूद और पोते मुहम्मदशाहके पीछे हुआ था। बीचके इन दो बादशाहोंको बनारसीदासजीने नहीं लिखा है।

आठवाँ जो गाजी लिखा है वह सैयद बहलोल लोदी है। शाह हुसेनके पीछे वही जौनपुरका मालिक हुआ था।

नवाँ जो वख्या सुलतान लिखा है, वह बहलोलका बेटा बारबुकशाह हो सकता है, जिसे बापने जोनपुरका राज्य दिया था।

२–जौनपुरका व्यापार

जौनपुरमें जो बनारसीदासजीने जवाहिरातका व्यापार होना लिखा है, सो सही है। क्यों कि जौनपुर आगरे और पटनेके बीचमें बड़ा भारी शहर था, और जब वहाँ बादशाही थी, उस वक्त तो दूसरी दिल्ली बना हुआ था, और चार कोसमें बसता था।

इलाहाबाद बसनेके पीछे जौनपुर उसके नीचे कर दिया गया था।

आईने अकबरीमें जौनपुरके १९ मुहाल लिखे हैं, परंतु अब अँगरेजी अमलदारीमें जौनपुर पाँच ही तहसीलोंका जिला रह गया है।

जौनपुरकी बस्ती अकबरके समयमें कितनी थी, इसका पता जुगराफिए (भूगोल) जौनपुरसे मिलता है। उसमें लिखा है कि अकबर बादशाहने गरीबोंकी आँखोंका इलाज करनेके लिए एक हकीमको भेजा था, जो गरीबोंका मुफ्त इलाज करता था, और अमीरोंको मोल लेकर दवा देता था। तो भी हजार पंद्रह सौ रुपए रोजकी उसकी आमदनी हो जाती थी। एक दिन उसके गुमाश्तोंने जब उससे कहा कि, आज तो पाँच सौ का ही सुरमा बिका है, तब उसने एक बड़ी आह भरी और कहा—हाय! जौनपुर वीरान (ऊजड़) हो गया। फिर वह उसी दिन आगरेको चला गया।

३–चीन कुलीचखाँ

कुलीच तुर्की भाषाका शब्द है, इसका अर्थ मालूम नहीं है। जिस नवाब कुलीचका जुल्म जौहरियोंपर बनारसीदासजीने लिखा है, उस कुलीचखाँका अकबरनामें और जहांगीरनामेसे इतना पता लगा है कि कुलीचखाँ इंदूजानका रहनेवाला जानी कुरबानी जातिका एक तुर्क था। इंदूजान तूरान देशका एक शहर है।

कुलीचखाँके बाप दादा मुगल बादशाहोंके नौकर थे। कुलीचखाँको अकबर बादशाहने सन् १७ जलूसी (संवत् १६२९) में सूरतकी किलेदारी और सन् २३ (संवत १६३५) में गुजरातकी सूबेदारी दी थी। सन् २५ (संवत् १६३७) में उसे वजीर बनाया। सन् २८ (संवत् १६४०) में फिर

गुजरातको भेजा और सन् ९९७ (संवत् १६४६) में राजा तोडरमलके मरनेपर वह दीवान बनाया गया, जो सन् १००२ (संवत् १६५०) तक रहा। इसी बीचमें सन् १००० (संवत् १६४८) में जौनपुर भी उसकी जागीरमें दे दिया गया। सन् १००५ (संवत् १६५३) में बादशाहने शाहजादे दानियालको इलाहाबादके सूबेमें भेजा, तो कुलीचखाँको उसका अतालीक (शिक्षक) करके साथ किया। उसकी बेटी शाहजादेको ब्याही थी।

फिर सन् ४४ (१६५६) में आगरेकी, और सन् ४६ (१६५८) में लाहौर तथा काबुलकी सूबेदारी उसको दी गई।

सन् १०१४ (संवत् १६६२) में जहांगीर बादशाहने उसको गुजरातमें बदल दिया, और सन् १०१६ (संवत् १६६२) में वह फिर लाहोर भेजा गया।

सन् ६ जहाँगीरी (संवत् १६६९) में काबुल और अफगानिस्थानके बंदोबस्तपर मुकर्रर होकर गया, जहाँ सन् १०२३ (संवत् १६७१) में मर गया।

बनारसीदासजीने जो संवत् १६५५ में कुलीचखाँका जौनपुरमें होना लिखा है, सो सही है। क्योंकि प्रथम तो जौनपुर कुलीचखाँकी जागीरमें ही था, दूसरे संवत् १६५३ में उसकी तैनाती भी इलाहाबादके सूबेमें हो गई थी, जिसके नीचे जौनपुर था।

जहाँगीरके समयके मोतमितखाँके लेखोंका जो सार मिला है, उससे मालूम होता है कि मुगल बादशाहोंके यहाँ दो तरहके दूत होते थे। एक तो वे जो खुले तौरसे समाचारोंका संग्रह करते थे और उन्हें वाकयानवीस कहते थे, दूसरे वे जो गुप्त रीतिसे समाचार संग्रह करके भेजते थे। गुप्तचर लोग प्रायः राज्यके कर्मचारियोंकी देखभालमें रहते थे और वाकयानवीस विश्वसनीय घटनाओंको लिखकर भेजा करते थे। जिन सूबेदारोंके विषयमें समाचार देनेवाले अथवा गुप्तचर यह समाचार देते थे कि वे अपने अधिकारोंका दुरुपयोग करते हैं, तो वे अपने कामपरसे वापस बुला लिये जाते थे, उनके कामकी निन्दा होती थी, उनका अपमान किया जाता था और कड़ा दंड दिया जाता था। ऐसे बहुतसे अत्याचार और ज्यादतियाँ हुई होंगी जिनका समाचार सम्राटके कानोंतक नहीं पहुँचा हो परन्तु अकबर और जहाँगीरने कभी किसी अत्याचारीकी रियायत नहीं की और तुरत ही अपने अत्याचारी अफसरोंको

रख्वास्त कर उन्हें दंड दिया। जौनपुरका सूबेदार चीन कुलीच खाँ प्रजापीड़क था। उसकी शिकायत आनेपर सम्राट्ने वापस बुलाया और यदि वह रास्तेमें न मर जाता तो उसे कड़ा दंड मिलता।

४–जौनपुरका विग्रह

यह विग्रह क्यों किया गया, इसका फल क्या हुआ और शाहजादा कैसे मान गया ? तुजक जहाँगीरीकी भूमिकामें जो हाल जहाँगीर बादशाहकी युवराजावस्थाका लिखा है, उससे इन प्रश्नोंका समाधान हो सकता है। उसमें लिखा है कि, तारीख ६ महर सन् १००७ (आसोज बदी १४ संवत् १६५५) को अकबर बादशाह तो दक्खन फतह करनेको गये और अजमेरका सूबा शाहसलीमको जागीरमें देकर रानाको सर करनेका हुक्म दे गये। शाह कुलीचखाँ महरम और राजा मानसिंहकी नौकरी इनके पास बोली गई। बंगालेका सूबा जो राजाके पास सौंपा हुआ था, उसे राजा अपने बड़े बेटे जगत्सिंहको सौंपकर शाहकी खिदमतमें रहने लगा।

शाह सलीमने अजमेर आकर अपनी फौज रानाके ऊपर भेजी और कुछ दिनों पीछे आप भी शिकार खेलते हुए, उदयपुरको गये, जिसको राना छोड़ गया था, और सिपाहियोंको पहाड़ोंमें भेजकर रानाके पकड़नेकी कोशिश करने लगे।

यहाँ खुशामदी और स्वार्थी लोग जो नीचे नहीं बैठा करते हैं, इनके कान भरा करते थे कि बादशाह तो दक्खनके लेनेमें लगे हैं और वह मुल्क एकाएकी हाथ आनेवाला नहीं है; और वे भी वगैर लिये वापस आनेवाले नहीं हैं। इसलिए हजरत जो यहाँसे लौटकर आगरेसे परेके आबाद और उपजाऊ परगनोंको ले लें, तो बड़े फायदेकी बात हो। बंगालेका फिसाद भी कि जिसकी खबरें आ रही हैं और जो वगैर गये राजा मानसिंहके मिटनेवाला नहीं है, जल्द दूर हो जायगा। यह बात राजा मानसिंहके भी मतलबकी थी, क्योंकि उसने बंगालेकी रखवालीका जिम्मा ले रक्खा था, इसलिए उसने भी हाँमें हाँ मिलाकर लौट चलनेकी सलाह दी।

---

१ देखो, १८ अगस्त १९२२ के श्रीव्येंकटेश्वर समाचारमें ' मुगलसम्राट् और उनके कर्मचारी ' शीर्षक लेख।

शाह सलीम इन बातोंसे राजाकी मुहीम अधूरी छोड़कर इलाहाबादको लौट गये। जब आगरेमें पहुँचे तो वहाँका किलेदार कुलीचखाँ पेशवाईको आया। उस वक्त लोगोंने बहुत कहा कि, इसको पकड़ लेनेसे आगरेका किला जो खजानोंसे भरा हुआ है, सहजहीमें हाथ आता है। मगर इन्होंने कबूल न करके उसको रुखसत कर दिया और यमुनासे उतरकर इलाहाबादका रास्ता लिया। इनकी दीदी हौदेमें बैठकर इनको इस इरादेसे मना करनेके लिए किलेसे उतरी ही थी कि ये नावमे बैठकर जलदीसे चल दिये और वे नाराज होकर लौट आई।

१ सफर सन् १००९ (द्वि० सावन सुदी ३ सवत् १६५७) को शाह सलीम इलाहाबादके किलेमें पहुँचे और आगरेसे इधरके बहुतसे परगने लेकर अपने नौकरोंको जागीरमें दे दिये। बिहारका सूबा कुतबुद्दीनखाँको दिया। जौनपुरकी सरकार लालाबेगको, और कालपीकी सरकार नसीम बहादुरको दी। घनसूर दीवानने तीन लाख रुपएका खजाना बिहारके खालिसेमेंसे तहसील करके जमा किया था, वह भी उससे ले लिया।

इससे जाना जाता है कि शाह सलीमने जो लालाबेगको जौनपुर दिया था, नूरम सुलतान लालाबेगको लेने नहीं देता होगा, जिसपर शाह सलीम शिकारका बहाना करके गया था, फिर नूरमबेगके हाजिर होनेपर लालाबेगको वहाँ रख आया होगा।

८—सुलेमान सुल्तान

सुलेमान किरानी जातिका पठान था। वह हिजरी सन् ९५६ (संवत् १६०६) से सन् ९८१ (संवत् १६३०) तक बंगालका स्वतंत्र हाकिम रहा था। उसकी राजधानी गौड़में थी, जो बंगालका एक पुराना शहर था और जिसपरसे बगालको अबतक गौड़ बंगाल कहते हैं, और पहले गौड़ देश भी कहते थे। कविवरने संवत् १६२५ में बंगालका राजा शाह सुलेमानको लिखा है, सो बहुत ही ठीक है। पीछे सन् ९८३ (संवत् १६३२) में अकबरकी फौजने सुलेमानके बेटे दाऊदखाँसे बंगाल और उड़ीसा छीन लिया।

९—गाँठका रोग या मरी (प्लेग)

[वि० सं० १६७३ में आगरेमें गाँठका रोग फैलनेका पं० बनारसीदासजीने अर्ध कथानक (५७२-७६) में जिक्र किया है, उसके सम्बन्धमें नीचे लिखे प्रमाण और मिले हैं—]

१—जहाँगीरनामेमें बादशाह जहाँगीरने अपने चौदहवें वर्षके विवरणमें लिखा है, "वैशाख वदी १ मंगलवार सं० १६७५ की रातको बादशाहने अहमदाबादकी ओर बाग फेरी। गर्मीकी तेजी और हवाके बिगड़ जानेसे लोगोंको बहुत कष्ट होने लगा था, इसलिए राजधानीको जानेका विचार छोड़कर अहमदाबादमें रहना स्थिर किया। क्योंकि गुजरातकी बरसातकी बहुत प्रशंसा सुनी थी। अहमदाबादकी भी बहुत बड़ाई होती थी। उसी समय यह भी खबर आई कि आगरेमें फिर मरी फैल गई है और बहुतसे आदमी मरते हैं। इससे आगरे न जानेका विचार और भी स्थिर हो गया।

ज्योतिषियोंने माघ सुदी २ सं० १६७५ को राजधानीमें प्रवेश करनेका मुहूर्त निकाला था। परन्तु इन दिनों शुभचिन्तकोंने अनेक बार प्रार्थना की कि ताऊनका रोग आगरेमें फैला हुआ है। एक दिनमें न्यूनाधिक १०० मनुष्य काँख तथा जाँघके जोड़ या गलफड़ेमें गिलटी उठकर मरते हैं। यह तीसरा वर्ष है। जाड़ेमें यह रोग प्रबल हो जाता है और गर्मीमें जाता रहता है। अजब बात यह है कि इन तीन वर्षोंमें आगरेके सब गाँवों और कसबोंमें तो फैल चुका है परन्तु फतहपुरमें बिलकुल नहीं पहुँचा। अमनाबादसे फतेपुर ढाई कोस है जहाँके मनुष्य मरीके डरसे घरबार छोड़कर दूसरे गाँवोंमें चले गये हैं। इस लिए विचारपूर्वक यह बात ठहराई गई कि इस मुहूर्तपर फिर प्रवेश करूँ और जब रोग धीमा पड़ जावे तब दूसरा मुहूर्त निकलाकर आगरे जाऊँ।

मृत असफखाँकी बेटीने, जो खान आजमके बेटे अबदुल्लाखाँके घरमें है, बादशाहसे यह विचित्र चरित्र ताऊनके विषयमें कहा और उसके सत्य होनेपर बहुत जोर दिया। इससे बादशाहने वह घटना तुजुकमें लिख ली।

"उसने कहा था कि एक दिन घरके आँगनमें एक चूहा दिखाई दिया। वह मतवालोंकी भाँति गिरता पड़ता इधर-उधर दौड़ रहा था। उसे कुछ

सुझाई न देता था। मैंने एक लौंडीसे इशारा किया। उसने उसकी पूँछ पकड़कर बिल्लीके आगे डाल दिया। पहले तो बिल्लीने बड़े मोदसे उछलकर उसको मुँहमें पकड़ा किन्तु पीछे घिन करके तुरंत छोड़ दिया। बिल्लीके चेहरे-पर धीरे-धीरे मांदगीके चिह्न दिखाई देने लगे। दूसरे दिन वह मरण-प्राय हो गई। तब मेरे मनमें आया कि थोड़ा-सा तिरियाक-फारूक (विष उतारने-वाली एक औषध) इसको देना चाहिए। जब उसका मुँह खोला गया तो देखा कि उसकी जीभ और तालू काला पड़ गया था। तीन दिन बुरा हाल रहा। चौथे दिन उसे कुछ सुध आई। फिर एक लौंडीको ताऊनकी गाँठ निकली। उसकी जलन और पीड़ासे वह सुध भूल गई। रंग बदलकर पीला और काला हो गया। प्रचण्ड ज्वर चढ़ा। दूसरे दिन वह मर गई। इसी प्रकार सात-आठ मनुष्य उस घरमें मरे और रोगग्रस्त हुए। तब मैं उस स्थानसे निकलकर बागमें चली गई। वहाँ फिर किसीके गाँठ नहीं निकली पर जो पहले बीमार थे वे नहीं बचे। आठ-नौ दिनमें सत्रह मनुष्य मर गये। उसने यह भी कहा कि जिनके गाँठें निकली हुई थीं, वे यदि किसीसे पानी पीने या नहानेको माँगते थे तो उसको भी यह रोग लग जाता था। अन्तको ऐसा हुआ कि मारे डरके कोई उनके पास नहीं जाता था।"

२—बम्बईके भूतपूर्व कमिश्नर 'सर जेम्स केम्बले' ने 'अहमदाबाद गेजेटियर' में कुछ दिन पहले इस विषयसम्बन्धी अनेक उल्लेख किये हैं। उन्होंने लिखा है कि "ईस्वी सन् १६१८ अर्थात् वि० सं० १६७५ के लगभग अहमदाबादमें प्लेग फैल रहा था, जो कि आगरा-दिल्लीकी ओरसे आया था, और जिसका प्रारंभ ई० स० १६११ में पंजाबसे निश्चित होता है। जिस समय प्लेग आगरा और दिल्लीमें कहर मचा रहा था, वहाँके तत्कालीन बादशाह जहाँगीर उससे डरकर अहमदाबादमें कुछ दिनोंके लिए आ रहे थे। कहते हैं कि उनके आनेके थोड़े ही दिन पीछे इस छुआछूतके रोगने अहमदाबादमें अपना डेरा आ जमाया था। सारांश यह कि अहमदाबादमें आगरा-दिल्लीसे और आगरा-दिल्लीमें पंजाबसे प्लेगका बीज आया था। उस समय प्लेगका चक्र यत्र तत्र आठ वर्षके लगभग चला था। वर्तमान प्लेगकी नाई उस समय भी उसका चूहोंसे घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता था, अर्थात् उस समय जहाँ जहाँ रोगका उपद्रव होता था, चूहोंकी संख्यामें वृद्धि होती थी।"

३—उस समय हिन्दुस्तानमें जो यूरोपियन रहते थे, उन्हें भी प्लेगमें फँसना पड़ा था। वह काले और गोरोंके साथ नीतिज्ञकी नाई तब भी एक-सा वर्ताव करता था। इस विषयमें मि० टेरी नामक ग्रंथकारने लिखा है, "नौ दिनके अरसेमें सात अँग्रेजोंकी मृत्यु हो गई। प्लेगमें फँसनेके बाद इन रोगियोंमेंसे कोई भी चौबीस घंटेसे अधिक जीता नहीं रहा, बहुतोंने तो बारह घंटेमें ही रास्ता पकड़ लिया।" इतिहाससे पता लगता है कि सन् १६८४ में औरंगजेब बादशाहके लश्करमें भी प्लेगने कहर मचाया था।

४—बनारसीदासजीके नाटक समयसार ग्रंथसे भी प्लेगका पता लगता है। उसमें बंधद्वारके कथनमें जगवासी जीवोंके लिए कहा है—

"धरमकी बूझी नाहिं उरझे भरममाहिं
नाचि नाचि मर जाहिं मरी कैसे चूहे हैं ॥ ४३"

पाठकोंको जानना चाहिए कि उस समय प्लेगको मरी कहते थे। यद्यपि महामारी (हैजा) को भी मरी कहते हैं, परन्तु चूहोंका मरना यह प्लेगका ही असाधारण लक्षण हैं, हैजाका नहीं।

---

१० मृगावती और मधुमालती

जब बनारसीदासजी आगरेमें अपनी सब पूँजी खो चुके थे और बिल्कुल खाली हाथ थे, तब समय काटनेके लिए वे मधुमालती और मृगावती नामक दो पोथियोंको पढ़ा करते थे और उन्हें सुननेके लिए वहाँ दस बीस आदमी इकट्ठे हो जाते थे। ये दोनों ही प्रेम-काव्य हैं और दोनोंके ही कर्त्ता सूफी जान पड़ते हैं।

मृगावती—इसके कर्ता कुतबन चिश्ती वंशके शेख बुरहानके शिष्य थे और जौनपुरके बादशाह हुसेन शाहके आश्रित थे। पदमावतके कर्त्ता मलिक मुहम्मद जायसी इनके गुरु भाई थे। मृगावती चौपई-दोहाबद्ध है और हिजरी सन् ९०९ (वि० स० १५५८) में लिखी गई थी। इसमें चन्द्र-नगरके राजा गणपतिदेवके राजकुमार और कंचनपुरके राजा रूपमुरारिकी कन्या मृगावतीकी प्रेम-कथाका वर्णन है। इस कहानीके द्वारा कविने प्रेम-मार्गके त्याग और कष्टका निरूपण करके साधकके भगवत्प्रेमका स्वरूप

दिखलाया है। बीच बीचमें सूफियोंकी शैलीपर बड़े सुन्दर रहस्यमय आध्यात्मिक आभास हैं[१]।

मधुमालतीके कर्त्ता मंझन नामके कवि हैं; परन्तु उनके सम्बन्धमें अभी तक और कुछ भी मालूम नहीं हुआ है। स्व० पं० रामचन्द्र शुक्लने अपने 'हिन्दी साहित्यका इतिहास' में लिखा है कि "मंझनकी रची मधुमालतीकी एक खंडित प्रति मिलती है जिससे इनकी कोमल कल्पना और स्निग्ध सहृदयताका पता लगता है। मृगावतीके समान मधुमालतीमें भी पाँच चौपाइयों (अर्द्धालियों) के उपरान्त एक दोहेका क्रम रक्खा गया है। पर मृगावतीकी अपेक्षा इसकी कल्पना विशद है और वर्णन भी अधिक विस्तृत तथा हृदयग्राही। आध्यात्मिक प्रेमभावकी व्यंजनाके लिए प्रकृतिके भी अधिक दृश्योंका समावेश मंझनने किया है[२]।" जायसीने अपने पद्मावतमें अपने पूर्ववर्ती चार प्रेमकाव्योंका उल्लेख किया है जिनमें मधुमालती भी है—मुग्धावती, मृगावती, मधुमालती और प्रेमावती। पद्मावतका रचनाकाल वि० सं० १५९५ है। उसमान कविकी चित्रावलीमें भी जो वि० सं० १६७० की रचना है—मधुमालतीका उल्लेख है।

चतुर्भुजदास निगमकी बनाई हुई 'मधुमालती' नामकी एक पुस्तक और भी है जिसकी एक अशुद्ध प्रति अभी कुछ समय पहले मुझे बम्बईके अनन्तनाथजीके मन्दिरमें देखनेको मिली। परन्तु उससे यह नहीं मालूम हो सका कि चतुर्भुजदासका समय क्या है। यह भी एक प्रेमकथा है परन्तु इसमें राजनीतिकी चरचा अधिक है। इसकी प्रशंसामें कविने लिखा है—

बनसपतीमैं अंब फल, रस मैं......संत।
कथामाहिं मधुमालती, छै रितुमाहिं वसंत॥ ८१॥
लतामाहिं पंनग लता,......घनसार।
कथामाहिं मधुमालती, आभूषणमैं हार॥ ८२॥

परन्तु हमारी समझमें बनारसीदासजी मंझनकी ही मधुमालतीको पढ़ते होंगे। यह मधुमालती शायद इतनी पुरानी नहीं है।

अभी अभी मालूम हुआ कि काशी नागरीप्रचारिणी सभाके कलाभवनमें मंझनकी मधुमालतीकी दो प्रतियाँ संग्रह की गई हैं जिनमें एक उर्दू लिपिमें है और दूसरी नागरीमें। सभा इसको शीघ्र ही प्रकाशित कर रही है।

१–२ देखो पं० रामचन्द्र शुक्लकृत हि० सा० का इतिहास पृ० १०६–७ (१९९९ का संस्करण)

११—युक्तिप्रबोधके उद्धरण

टीका—...श्रीशान्तिसूरिवादिदेवसूरिप्रभृतयस्तद्वितर्कविघटनकरणानि... भूरिप्रकरणानि विदधिरे इति न तत्र पुनः प्रयासः साधीयान्, तथाप्यधुना द्वेधापि उग्रसेनपुरे वाणारसीदासश्राद्धमतानुसारेण प्रवर्तमानैराध्यात्मिका वयमिति वदद्भिर्वाणारसीयापरनामभिर्मतान्तरीयैर्विकल्पकल्पनाजालेन विधीयमानं कतिपयभव्यजनविमोहनं वीक्ष्य तथा भविष्यत्श्रमणसंघसन्तानिनां एतेऽपि पुरातना जिनागमानुगता एव, सम्यक् चैषां मतं, न चेत्कथं 'छव्वाससएहिं नवोत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स। तो वोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा।' इत्युत्तराध्ययननिर्युक्तौ श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ च इत्यादिवत् कुत्रापि श्रीश्रमणसंघधुरीणैरेतन्मतोत्पत्तिक्षेत्रकालप्ररूपणाभेदादि च नाभिहितम् इत्येवंलक्षणां भ्रान्तिं समुद्भाविनीं विज्ञाय तन्निरासार्थमेतन्मतोत्पत्त्याद्यभिधेयमेव, न च दिगम्बरमतानुसारित्वादस्य तन्मताक्षेपसमाधानाभ्यामस्याप्याक्षेपसमाधाने इति किमेतदुत्पत्त्याद्यभिधानेनेति वाच्यं, कथंचिदभेदेऽपि उत्पत्तिकालप्ररूपणादिकृतभेदात्, ततश्चैतन्मतोत्पत्त्याद्यभिधित्सुर्ग्रन्थकर्ता...गाथामाह—

पणमिय वीरजिणिंदं दुम्मयमयमयविमद्दणमयंदं।
वुच्छं सुयणहियत्थं वाणारसियस्स मयभेयं॥ १॥

* * * *

टीका—...ततश्च एतेषां बाणारसीयानां तु श्वेताम्बरमतापेक्षया सर्वसिद्धान्तप्रतिपादितस्त्रीमोक्षकेवलिकवलाहारदिकमश्रद्दधतां दिगम्बरनयापेक्षयाऽपि पुराणाद्युक्तपिच्छिकाकमण्डलुप्रमुखाणामनङ्गीकरणेन कथं सम्यक्त्वं श्रद्धेयं? यज्ञब्रह्मचारिपिच्छिकाकमण्डलुप्रभृतिपरिभाषकत्वेन आर्षवाक्यं विना पौरुषेयवाक्यस्यैव केवलं प्रमाणकारकत्वेन सर्वविसंवादिनिह्नवरूपत्वेन च दिगम्बरनयस्यापि अस्मत्प्राचीनाचार्यैः प्रथमगुणस्थानित्वं निरणायि, तर्हि तदनुगतश्रद्धावतां वाणारसीयानां तत्त्वे किं वक्तव्यमिति।

* * * *

सिरि आगराइनयरे सड्ढो खरयरगणस्स संजाओ।
सिरिमालकुले बणिओ बाणारसिदासणामेण॥ २॥

सो पुव्वं धम्मरुई कुणइ य पोसहतवोवहाणाई ।
आवस्सयाइपढणं जाणइ मुणिसावयायारं ॥ ३ ॥
दंसणमोहस्सुदया कालपहावेण साइयारत्तं ।
मुणिसड्डवए मुणिउं जाओ सो संकिओ तम्मि ॥ ४ ॥
जाया वयट्ठियस्सवि कयापि तस्सन्नपाणपरिभोगे ।
छुहतिण्हाइसएणं मणसंकप्पाओ वितिगिच्छा ॥ ५ ॥
पुट्ठं तेण गुरूणं भयवं जंपेह दुव्विकप्पस्स ।
णिच्छयओ किमवि फलं केवलकिरिआइ अत्थि ण वा ॥ ६ ॥
अह तेहिं भणियमेयं णत्थि फलं भद्द किमवि विमणस्स ।
तेणावधारियं तो किं ववहारेण विफलेण ॥ ७ ॥
इत्थंतरे य पुरिसा अवरे वि य पंच तस्स संमिलिया ।
तेसिं संसग्गेणं जाया कंखावि णियधम्मे ॥ ८

टीका—प्रागुक्तयुक्त्या व्यवहारवैफल्यं श्रद्दधानस्य तस्य कदाचित् कालान्तरे अपरेऽपि पंचपुरुषा रूपचन्द्रपण्डितः १, चतुर्भुजः २, भगवतीदासः ३, कुमारपालः ४, धर्मदासश्चेति ५, नामानो मिलिताः।......स बाणारसीदासः पूर्वं प्रोषध-सामायिकप्रतिक्रमणादिश्राद्धक्रियासु तथा जिनपूजनप्रभावनासाधर्मिकवात्सल्यसाधुजनवन्दनमाननअशनादिदानप्रभृतिश्राद्धव्यवहारेषु सादरोऽभूत्, पश्चाच्छंकया विचिकित्सया च कलुषितात्मा सन् दैवात्पंचानां पूर्वोक्तानां संसर्गवशात् सर्वं व्यवहारं तत्याज।...बाणारसीदासोऽपि नानाशास्त्राणि वाचयन् प्रमाणनयनिक्षेपाधिगममार्गाप्राप्त्या अनेकनयसन्दर्भान्निरीक्ष्य रूपचन्द्रादिदिगम्बरमतीयवासनया श्वेताम्बरमतं परस्परविरुद्धत्वान्न सम्यक् विचारसहं, दिगम्बरमतमेव सम्यक्, इत्यादि काक्षां प्राप्तवान्,......

सुदृष्टिभिरनेकागमयुक्त्या प्रबोध्यमानोऽपि न स्थिरीभूतो बाणारसीदासः प्रत्युत दशाश्चर्यादिश्वेताम्बरागमोक्तं स्वमनीषया दूषयन् अनेकजनान् व्युद्ग्राह्य स्वमतमेव पुपोष।...

अज्झत्थसत्थसवणा तस्सासंबरणएवि पडिवत्ती ।
पिच्छियकमंडलुजुए गुरूण तत्थावि से संका ॥ ९ ॥

टीका—प्रायसोऽध्यात्मशास्त्रे ज्ञानस्यैव प्राधान्याद्दानशीलादितपःक्रियानां गौणत्वेन प्रतिपादनादध्यात्मशास्त्राणामेव श्रवणं प्रत्यहं, तस्मात् तस्य वाणारसी-

दासस्य आशाम्बरा दिगम्बरास्तेषां नये शास्त्रे प्रतिपत्तिः निश्चयोऽभूत्, तदेव प्रामाणमिति स्वीचकार । अपि शब्दादध्यात्मशास्त्रादिदिगम्बरतन्त्रेऽपि व्रत-समित्यादिप्रतिपादकग्रन्थे न प्रामाण्यमिति तन्मते निश्चय इत्यर्थः । यद्वा अध्यात्मशास्त्रश्रवणादाशाम्बरनये विप्रतिपत्तिः अनिश्चयो, व्यवहारविरोधाद्, दिगम्बरा हि प्राचीनाः स्वगुरून् मुनीन् श्रद्धते, अस्य तु तदश्रद्धानात्, एवमन्योऽपि तन्मते विशेषः, तमेवाह—गुरूणां पिच्छिका कमण्डलु चैतद्द्वयं परिग्रहत्वान्नोचितं, दिगम्बराणां बहुषु ग्रन्थेषूक्तमपि न प्रमाणमिति तस्य बाणारसीदासस्य शंकाऽभवत्, तेन श्वेताशाम्बरनयद्वयापेक्षयाऽपि बाणारसीयमते न सम्यक्त्वमिति सिद्धं ।...

वयसमिइबंभचेरप्पमुहं ववहारमेव ठावेइ ।
तेण पुराणं किंचिवि पमाणमपमाणमवि तस्स ॥ १०

टी०—सर्वेषां शास्त्राणां निश्चयनयोन्मुखत्वेऽपि निश्चयसाधनाय व्यवहार एव प्रागुक्तयुक्त्या समर्थः, ततस्तमेव मुख्यवृत्त्या व्यवस्थापयति । तेन हेतुना पुराणशास्त्रं किंचिदेव प्रमाणं आदिपुराणादिकं, न सर्वं पुराणमात्रं, किन्तु अप्रमाणमेव, किंचित्प्रमाणोक्तेरेवाप्रामाण्यं शेषस्यागतं चेत् किं पुनरुक्तेनेति न धार्यं, आदिपुराणदिके प्रमाणेऽपि यत्स्वमतव्याघातकं तदप्रमाणमिति यथाछन्दत्वज्ञापनात् । यद्वा पुराणं प्राचीनं दिगम्बराचरणं प्रमाणमप्रमाणमिति व्याख्येयम्, उभयवचनात्, न मम दिक्पटमतेन कार्यं, किन्तु अहं तत्त्वार्थी, तथा च यज्जिनवचनानुसारि तदेव प्रमाणं नान्यदिति ख्यापितं । यद्वा पुराणं जीर्णं तत्त्वार्थादिसूत्रमित्यपि ज्ञेयं । अत्र यद्यपि पुराणादि दिगम्बरमतोत्थापने त एव प्रतिविधातारस्तथापि कवलाहारादिव्यवस्थापने साक्षिकस्थानीयत्वात्पुराणप्रामाण्यं साध्यते ।...

अह नियमयवुड्ढिकए पयासियं तेण समयसारस्स ।
चित्तकवित्तणिवेसं नाडयरूवं मइविसेसा ॥ ११
बाणारसीविलासं तओ परं विविहगाहदोहाइ ।
अबुहाण बोहणत्थं करेइ संथवणभासं च ॥ १२
सम्मत्तम्मि हु लद्धे बंधो णत्थित्ति अविरओ भुज्जा ।
वयमग्गस्स अफासी न कुणइ दाणं तवं बंभं ॥ १३
णाणी सया विमुत्तो अज्झप्परयस्स निज्जरा विउला ।

कूंवरपालप्पमुहा इय मुणिउं तम्मए लग्गा ॥ १४
वणवासिणो य णग्गा अट्ठावीसइगुणेहिं संविग्गा ।
मुणिणो सुद्धा गुरुणो संपइ तेसिं न संजोगो ॥ १५
तम्हा दिगंबराणं एए भट्टारगावि णो पुज्जा ।
तिलतुसमेत्तो जेसिं परिग्गहो णेव ते गुरुणो ॥ १६
एवं कत्थवि हीणं कत्थवि अहियं मयाणुराएणं ।
सोऽभिनिवेसा ठावइ भेयं च दिगंबरेहिंतो ॥ १७
सिरिविक्कमनरनाहा गएहिं सोलससएहिं वासेहिं ।
असि उत्तरेहिं जायं बाणारसियस्स मयमेयं ॥ १८
अह तम्मि हु कालगए कूंवरपालेण तम्मयं धरियं ।
जाओ तो बहुमण्णो गुरुव्व तेसिं स सव्वेसिं ॥ १९
जिणपडिमाणं भूसणमल्लारुहणाइ अंगपरियरणं ।
बाणारसिओ वारइ दिगंबरस्सागमाणाए ॥ २०
महिलाण मुत्तिगमणं कवलाहारो य केवलधरस्स ।
गिहि अन्नलिंगिणो वि हु सिद्धी णात्थि त्ति सद्दहइ ॥ २१
आयारंगप्पमुहं सुयणाणं किमवि णो पमाणेइ ।
सेयंबराण सासणसद्धाइ तयंतरं बहुलं ॥ २२
अह गीयत्थजणेहिं आगमजुत्तीहिं बोहिओ अहियं ।
तह वि तहेव य रुच्चइ बाणारसिए मए तिसिओ ॥ २३
पाएण कालदोसा भवंति दाणा परम्मुहा मणुआ ।
देवगुरूणमभत्ता पमादिणो तेसिमित्थ रुई ॥ २४
इय जाणिऊण सुअणा वाणारसियस्स मयवियप्पमिणं ।
जिणवरआणारसिआ हवंतु सुहसिद्धिसंवसिआ ॥ २५